UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182965

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 C51E Accession No. H3482

Author चतुर्वेदी, जगमोहनलाल.

Title एकनाथ व तुलसीदास : तुलनात्मक अध्ययन. 1965

This book should be returned on or before the date last marked below.

संत-ग्रंथ-माला पुष्प ४

एकनाथ व तुलसीदास

[तुलनात्मक अध्ययन]

★ ★ ★

लेखक

जगमोहनलाल चतुर्वेदी

प्रस्तावना

डॉ. रा. द. रानडे,

एम.ए., डी.लिट्.

संवत २०१०] मूल्य २-८ [ई. स. १९५४

प्रकाशक
श्री. त्र्यंबकराव महारूळकर,
ॲडव्होकेट
कार्यवाह, श्रीएकनाथ संशोधन-मंदिर,
पैठण, (औरंगाबाद).

दोन दीप एक होती ।
द्वैत-लोपें येकचि दीप्ती ॥

मुद्रक
दि. दा. गांगल, एम्.एस्
लोकसंग्रह छापखाना,
६२४ सदाशिव पेठ, पुणें

प्रस्तावना

बड़े हर्षका विषय है कि पं. जगमोहनलालजी चतुर्वेदी, एकनाथ संशोधन मंडल औरंगाबाद के संचालनमें 'एकनाथ व तुलसीदास' नामक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। मंडलके अध्यक्ष श्री बलवंतरावजी घाटे, सेशन जज, सिकन्दराबाद दक्षिणने अनुरोध किया है कि मैं उपरोक्त पुस्तककी प्रस्तावनाके रूपमें कुछ लिखूँ। सौभाग्यसे संत एकनाथ तथा तुलसीदास इन दोनोंके ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेका अवसर मुझे मिल चुका है। एकनाथकी कृतियोंका और विशेषतया एकनाथी भागवतका अध्ययन मैंने अपनी संतवचनामृत पुस्तक लिखते समय किया था और हालहीमें 'एकनाथ-वचनामृत' नामक रचना लिखनेके लिये एकनाथकी विचार-धाराका और भी अधिक उत्साहसे अध्ययन करना पड़ा है। जहाँतक गोस्वामी तुलसीदासके ग्रन्थोंका संबंध है मैं उनका रसास्वादन परमार्थ-सोपान पुस्तकको तैयार करते समय कर चुका हूँ। अतः प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखना मेरा कर्तव्य-सा हो जाता है। इस पुस्तकके संपादनसे यह सुतरां स्पष्ट है कि इसके विद्वान् लेखक श्री. चतुर्वेदीजी मराठी और हिन्दी दोनो भाषाओंको अच्छी तरह जानते हैं। इतनाही नही बल्कि दोनों भाषाएँ उनको अच्छी तरह अवगत है। ऐसा न होता तो यह रचना करना उनके लिये असंभव था। सन्त एकनाथके सभी ग्रन्थ मराठी भाषामें लिखे गए है। और गोस्वामी तुलसीदासके सब ग्रन्थ प्रायः अवधी हिन्दीमें हैं। मामूली भाषाज्ञानसे दोनोंके ग्रन्थोंका मर्म और सार जानना अति कठिन है।

एकनाथ और तुलसीदास दोनोने ईसवी सोलहवी सदीके प्रारम्भमें वाङ्मय-क्षेत्रमें पदार्पण किया था। श्री एकनाथका जन्म ईसवी सन् १५३३ के लगभग या उसी साल माना गया है। उस समय तुलसीदास अपने तारुण्यमें थे। ईसवी सन् १५९९ में श्री एकनाथने इस लोककी यात्रा पूर्ण की—ऐसा माना गया है और तुलसीदासने एकनाथके कुछ वर्षोंके बाद। यद्यपि इन दोनोंकी जन्मतिथि और मरणकालके बारेमें विद्वानोंमें मतभेद पाया जाता है तथापि इन दोनोंने ईसाकी सोलहवीं सदीके मध्यमें अपनी अपनी ग्रन्थ-रचना की है—इस विषयमें उनका मतैक्य है। यह भी माना गया है कि

गोस्वामी तुलसीदासका राम-चरित-मानस और संत एकनाथकी प्रसिद्ध रचना भागवत ये दोनों ई. सन् १५७० से १५८० के दरम्यान रचे गए है । कहा जाता है कि रामचरित-मानस ग्रन्थ गोस्वामीजीने अयोध्यामें सन् १५७५ में पूर्ण किया और श्री एकनाथने अपनी भागवत पुस्तक उसके दो वर्ष पहिले सन १५७३ में वाराणसी मुक्तिक्षेत्रमें आनंदवनमें मणिकर्णिकामहातीरपर समाप्त की थी । उस समय श्रीएकनाथ काशीजीमें तीन साल रह चुके थे । गोस्वामी तुलसीदास तो वाराणसीके ही निवासी माने गए है । ये दोनों काशीमें रहते हुए एक दूसरेसे मिले थे और उनका आपसमें परिचय हुआ था यह दिखानेके लिए कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हो चुका है । तीन सालतक श्रीएकनाथ काशीमें रहते हुए गोस्वामीजीसे मिलने नहीं पाये थे यह असंभवसी बात ज्ञात होती है । श्रीएकनाथमहाराज हिन्दी भाषासे अच्छी तरह परिचित थे और हिन्दी भाषाके रचे हुए उनके कतिपय पद भी विद्यमान है ।

श्री एकनाथ और गोस्वामी तुलसीदास इन दोनोंके ग्रन्थोंमें विचारसरणी और अध्यात्मोपदेशके सादृश्यकी भरमार है । इतना ही नहीं किन्तु इन दोनोंकी जीवनीमें भी निसर्गने सादृश्यको बना रखा है । दोनोंका जन्म मूलनक्षत्रपर होनेके कारण दोनोंके माता-पिता बाल्यमे ही चल बसे थे । दोनोंका पालन-पोषण उनके मातामह-पितामहके द्वारा हुआ । बाल्यसे ही दोनों परमार्थ-प्रवण थे । विरक्ति दोनोमें पूर्ववयस्में उत्पन्न हुई थी । परन्तु विरक्तिका कारण मात्र दोनोंका भिन्न भिन्न था । गोस्वामीजीका ब्याह कुछ छोटी अवस्थामें हुआ था । एक बार स्त्रीके मायके जानेपर वे स्त्रीप्रेमवश स्त्रीसे मिलनेके लिए ससुराल आधी रात खिड़की-द्वारा पहुँचे । इस विचित्र घटनासे उनकी स्त्रीने उत्तेजित होकर उनकी निर्भर्त्सना की जिसका फल था कि उन्होंने विरक्त होकर तीर्थाटन और तपस्यामें रत होकर संसारसे मुँह मोड़ लिया । किन्तु श्री एकनाथकी कथा और थी । उनको बाल्यमेंही सपना हुआ कि वे श्रीजनार्दनस्वामीके पास जाकर शिष्यत्व करें जिस आदेशका स्वीकार करके वे बिना अपने गुरुजनोंकी आज्ञा लियेही देवगिरि चले गये, जहाँ जनार्दन-स्वामी थे । कई साल उनकी सेवामें रहकर स्वात्मबोधको प्राप्त किया, जिसके दृढीकरणके लिये वे बादमें तीर्थाटनके लिए चले गए । वापिस लौटनेके बाद

श्रीजनार्दनस्वामीजीके आदेशसेही गृहस्थाश्रमका स्वीकार किया, जिसमें वे कभी भी लिप्त नहीं थे। और प्रपंचमें अलिप्त रहकर गृहस्थाश्रमको इतना सुन्दर निबाहा कि वे प्रपंच तथा परमार्थ दोनों चलानेवालोके लिए एक आदर्श पुरुष माने गए है।

श्री एकनाथ और गोस्वामी तुलसीदास दोनो ऊँचे दर्जेके सत महात्मा कहलाये गये। दोनों ख्यातनाम है। दोनोके ग्रन्थ देशभरमे लोकप्रिय है। और वे हिन्दी और मराठी भाषाके आकरग्रन्थ और मुकुटमणि है। जनता उनको प्रासादिक मानती है। वेदतुल्य उनका पारायण किया करती है। दोनो संस्कृत भाषा और वाङ्मयके अच्छे ज्ञाता थे। रामचरित-मानसकी रायबरेलीकी एक प्रति है, जिसमे बतलाया है कि गोस्वामी तुलसी-दासजीने अपनी रामायणका प्रणयन करते समय और उसके पूर्वभी सस्कृतके सैकड़ो ग्रन्थोका परिशीलन किया था, जिनमेसे उन्होने सामान्य स्थलोंको उद्धृत किया है। श्री एकनाथने भी ज्ञानेश्वरमहाराजकी परम्पराकी रक्षा करते हुए श्रीमद्भागवतके ग्यारहवे अध्यायपर अपना पारमार्थिक अनुभव न्योछावर कर दिया है। परमार्थकी अत्युच्च कक्षामे पहुँचनेके लिए दोनोने नामस्मरणकोही सुलभ उपाय बतलाया है। ज्ञान, उपासना और भक्तिका प्रतिपादन दोनो समानरूपसे करते आये है। आत्मबोध और ब्रह्म-साक्षात्कारके लिए दोनोने ज्ञानको आवश्यक माना है; तथापि भक्ति-रहित ज्ञानकी निंदा दोनोने भी मुक्त-कण्ठसे की है। ज्ञानभक्तिविरहित रहेगा तो उसमें प्रेमका अभाव सा रहेगा। ऐसे रूक्ष ज्ञानका समादर लोकमे होना कठिन है। इसलिए भक्तिमार्गके साथही साथ ज्ञानमार्गकी प्रशसा की गई है। वास्तवमें दोनोमें कोई भेद नही हो सकता। जैसे गोस्वामीजीने कहा है—'भगतिहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा'। जैसा गीतामे भी यह बात कही है कि चतुर्विध भजकोमें चौथा ज्ञानी भक्त सबसे श्रेष्ठ है—तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते'। दूसरी बात यह है कि भक्तिमार्गका अवलम्बन हमेशा क्षेमकर होता है। जैसे गोस्वामीजीने ज्ञानी और भक्तका परमात्माके साथ सम्बन्ध दिखाते हुए कहा है कि ज्ञानी मुझे प्रौढ़ तनयके समान है और भगत बालक सुतके समान—'मेरे प्रौढ़ तनयसम ज्ञानी। बालक-सुतसम दास अमानी'। इस लिये छोटे लड़केकी चिंता

भगवानको रहती है । लड़का बड़ा हो जानेके बाद उसकी चिंता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती । भगवान जब चिंता करते हैं तो भक्तको डरनेकी कोई आवश्यकता नही होती । ज्ञानी अपने बलपर निर्भर होते हैं। भक्तलोग अपनी चिन्ता भगवानको सौंप देते है । इसलिये ज्ञानी लोगोंको जो भय होता है वह भक्तलोगोंको प्रतीत नहीं होता । भक्ति नवविधा सर्व-विश्रुत है । श्रीमद्भागवतका श्लोक—" श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥' यह सर्व विश्रुत है और श्री एकनाथमहाराजने इस नव प्रकारकी भक्तिमें किस पुरुषने कौनसी भक्ति की यह भी दिखाया है । गोस्वामीजीकी नवविधा भक्ति अध्यात्म-रामायणनिर्दिष्ट नवविधा भक्तिके अनुसार है, यह बात समुचित रूपसे रायबरेलीकी पुस्तकम तथा अध्यात्म-रामायणको जिन्होंने पढ़ा है उन्होंने बतलायी है । तुलसीदासने इसको शबरीका आतिथ्य लेते समय श्री रामचन्द्रजीसे कहलवाया है । ये नौ प्रकार इस तरह निर्दिष्ट हैं :—

१. प्रथम भगति सन्तन्ह करि संगा । २. दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा ॥ ३. तीसरि भक्ति अमान गुरु-पदपंकज-सेवा । ४. चौथि भगति मम गुणगण करइ कपट तजि गान ॥ ५. मन्त्रजाप मम दृढविस्वासा । पंचम भजनसो वेद-प्रकासा ॥ ६. छँठ दम शील विरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ॥ ७. सातवँ सम मोहिमय जग देखा । मोते सन्त अधिक करि लेखा ॥ ८. आठवँ जथा लाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखा परदोषा ॥ ९. नवम सरल सबसन छल हीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥ इस प्रकार है । श्रीरामचन्द्र शबरीसे कहते है कि—नवमँह एकउ जिनके होई । नारि-पुरुष सचराचर कोई ॥ सोई अतिशय प्रिय सबरी मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥

नामके साथ रूपका भी स्मरण होना आवश्यक है । तुलसीदासजी तो कहते है कि—नामरूप दुइ ईश-उपाधी । उनमें एक बड़ा एक छोटा ऐसा नहीं समझना चाहिए—को बड़ छोट कहत अपराधू । तुलसीदास कहते है कि रूपको देखे बिना भी नाम कहे तो भगवान अधिक स्नेहसे हृदयमें आते हैं। किन्तु नामके बिना रूप करतलगत होनेपर भी पहिचान नहीं पड़ता—रूप विशेष नाम बिन जाने । करतलगत न परहिं पहिचाने ॥ सुमिरय नाम रूप

बिन देखे । आवत हृदय सनेह विशेखे ।। एकनाथमहाराज भी कहते हैं कि नामरूपा नाहीं मेळ । अवघा वाचेचा गोंधळ ।। उनके कहनेका साराश यह है कि मुखसे नाम उच्चारते समय चित्त विषयोंकी ओर नही दौड़ना चाहिए—नाम घेतां हे वैखरी । चित्त धावें विषयावरी ।। वह स्मरण विस्मरणके समान बेकार है । एकनाथमहाराज कहते हैं कि जो प्राणिमात्रमें ही नहीं बरन् भूतमात्रमें भगवद्भावको रखता है और देखता है वही भाव ज्ञान है और वही भक्ति भी है । सहजनिजबोधमें सबाह्याभ्यंतरमें पूर्ण परमानन्दका अनुभव होता है । हरिका नाम सुननेसे जिसको सुख नही होगा उसके भीतर पाप भरा हुआ है, ऐसा तू समझ । नामधारक सबसे और ब्रह्मवेत्तासे भी कोटि-गुण श्रेष्ठ होता है, ऐसा श्रीएकनाथका मत है । नामचिन्तनसे सर्वकार्योंकी सिद्धि होती है । कहते हैं कि—" चिन्तनें तुटे आधि-व्याधि । चिन्तने तुटतसे उपाधि ।। चिन्तनें होय सर्वसिद्धि । एका जनार्दनाचे चरणी ।।" सच्चा भाव हृदयमें रखनेसे भक्ति-मुक्ति अवश होकर घर आ जाती है । सच्चे भक्ति-भावसे हरिकीर्तन करें तो जनार्दन हृदयमें प्रकट होते हैं । उस समय विघ्न आवेगा तो चक्र-गदा लेकर भगवान् उसे दूर करते हैं । अद्वय भजन और अखंड स्मरणसे, कीर्तन करनेसे तत्काल मुक्ति मिलती है । इसलिये परमपावन सगुण चरित्रका वर्णन करना चाहिए । नामकी महिमा तुलसीदासने भी मुक्त कण्ठसे गाई है । उन्होंने कहा है कि—अगुन सगुनबिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ।। वे कहते हैं कि—निर्गुन रूप अति सुलभ सगुन न जाने कोई । भगत-हेतु भगवान् प्रभु, राम धरेउ तनु भूप । उनका निर्गुन रूपका वर्णन इस प्रकार है—सोई सच्चिदानन्दघन रामा । अज विज्ञानरूप गुनधामा ।। व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता । अगुन अदभ्र गिरा-गोतीता ।। निर्मल निराकार निर्मोहा । नित्य निरामय सुख-सन्दोहा ।। ऐसा निर्गुन रूप प्रभु, भगतवश सगुन रूप धारण करते हैं । इसको सुनकर मुनियोके मनमें भी भ्रम हो जाता है । एक स्थानमें तुलसीदास क्या सुन्दर कहते हैं !—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा । अकथ, अगाध, अनादि अनूपा ।। मोरें मत बड़ नाम दुहूतें । किए जेहि युग निज बस निज बूते ।। निर्गुन ते एहि भाँति बड़ नाम प्रभाव अपार । कहेऊँ नाम बड़राम ते, निज विचार अनुसार ।। नामस्मरण अप्रतिहत होनेके लिये सत्संगतिकी बडी आवश्यकता होती है । सर्वत्र ब्रह्मको व्यापक देखना यही सबसे बड़ी सत्संगति है ।

साक्षात्कारी पुरुषके लक्षण दोनों महापुरुषोंने अपने ग्रन्थोंमें दिए हैं। और उनमें श्री एकनाथमहाराजने विशेषरूपसे दिए है। वे कहते है कि साक्षात्कार होनेके पूर्वमें अष्ट सात्त्विक भावोंका उदय साधकके हृदयमें होता है। और इन अष्टसात्त्विक भावोंका प्रादुर्भाव होतेही ईशकृपा होती है। शरीरपर रोमाचोका खड़ा होना, पसीनेसे भीज जाना, गात्रोंमें कम्पका प्रादुर्भाव होना, कण्ठ गद्‌गद होना, अश्रु-प्रवाह बहना, कण्ठस्वर बदलना, रंग फीका पड़ना और मूर्च्छातिक आ जाना ये आठ सात्त्विक भाव कहलाते है। स्वरूपमे ऐक्यता पानेके पूर्वमें इनका प्रादुर्भाव साधकोके हृदयमें होता है। कानोमें मन्त्रका प्रवेश होकर वह नयनोके सामने खड़ा हो जाता है। अथवा सब अंग उसकी आँखें बन जाते है। आँखोकी भी आँखको देखनेसे जन्ममरणसे छुटकारा पा जाता है। चिन्मयरूपी आत्मज्योतिका प्रत्यक्ष करनेसे भ्रमका निरास होता है। सर्वत्र सबेरेका प्रकाश चमकने लगता है। श्रीएकनाथमहाराज अरुणोदयकी प्रार्थनारूपी काकड़ारतीका* वर्णन करते हुये कहते है—चराचर प्रकाशित हुए और गगन शोभायमान हो रहा है। निज-तेज नयनोमे रुक गया है और भीतरी और बाहरी प्रभा एक हो रही है। आर्तिक्य नीराजन होते ही नित्य नूतन प्रतीत होता है। बाहरी आरतीके दृश्यसे नयनोका तेज भी फैल जाता है। एकाजनार्दन उस तेजसे तन्मय हो गये। आत्मज्योतिका अनुभव एकनाथमहाराजने अपनी सबेरेकी प्रार्थनामे समाविष्ट किया है। बोधभानुका उदय होते ही अस्तमानके अध-कारका नामनिशान भी मिट जाता है। श्री एकनाथ कहते है कि जब गंगाजीमें हमने गोता लगाया तब चिन्मयरूपका प्रत्यक्ष होनेसे स्वय गगाजी उससे पावन हो गई। वे कहते है कि स्वयप्रकाशमे स्नान करके ऐक्य भावसे सब प्राणिमात्रका नमन करनाही सध्या है। ऐसी संध्या सपन्न हो जाती है तब सन्देह सब नष्ट होता है। चतुर्भुजरूपका प्रत्यक्ष करनेसे सब संसार असार हो जाता है। सर्वत्र ध्यानमें, मनमें, शयनमें श्री एकनाथ देवदर्शन ही करते है। देवताके बिना किसीका भी दर्शन नही होता। जहाँ देखे वहाँ वही दीख पडता है। सर्व भूतमात्रमें भगवद्‌भाव हो जाता है। मन राममें रँग गया और रामरूप हुआ। श्री एकनाथ कहते है कि हम मरकर भी जीवित है। सारे त्रैलोक्यको आनन्दमय अनुभूत करते हैं।

* काकडारती = मङ्गलारती.

मैं अब पूजा करना सोचता हूँ तो अपनीही पूजा दीख पड़ती है। अपनी पूजा आपको नहीं करनी चाहिए। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्यका बोध हुआ। कोऽहं सोऽहं परे गए। जो दीख पड़ा सो ब्रह्म। सर्वव्यापी ब्रह्मके होनेसे दिशाओंका भी भेद नही जाना जाता। उत्तम भूमिमें बोये हुए गुरुवचनरूपी बीज अनंत फसलको देने लगे तो उसकी गणना किस प्रकार होती है! श्री तुलसीदास भी कहते है कि—कोऊ कहे सत्य झूठ कहे कोऊ। जुगल प्रबल करि मानै। तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम जो आपहि पहिचाने। और भी कहते हैं—तुलसी मूरति रामकी घट घट रही समाय। जैसे मेहंदीके पातमें लाली लखी न जाय॥ कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूंढै वन माँहि। ऐसे घटघट राम है, दुनिया ढूँढ़न जाय॥ घर राखे घर जात है, घर छाँडै घर जाय। तुलसी घर वन बीच रहु राम-प्रेम-पुर छाय॥

श्री चतुर्वेदीने 'एकनाथ व तुलसीदास' पुस्तक तीन भागोमें विभाजित की है। पहिले भागमे दोनोकी जीवनी दी है। वह थोडेमें सुदर है। उस प्रकरणमे भी दोनों किस प्रकार सादृश्यको रखते है यह कुशलतासे द्योतित किया है। दूसरा भाग दोनोके काव्यकी अर्थात् दोनोने अपने ग्रंथोंमें काव्यकौशल कहाँ तक अनुस्यूत किया है इसकी समालोचना है। दोनों संत होते हुए काव्य कला यह प्रधान विषय उनके ग्रथोका नही माना जा सकता। परमार्थका प्रतिपादन रोचक करनेके उद्देशसे ही दोनोने काव्यका अवलंब किया है। तथापि काव्यकी दृष्टिसे भी दोनो ऊँचे दर्जेके कवि माने जा सकते है। तुलसीदासका काव्य काव्यकी दृष्टिसे कुछ सरस उतरेगा; किन्तु परमार्थका साक्षात्कार-प्रतिपादन श्री एकनाथका श्रेष्ठ माना जायगा। काव्यकी दृष्टिसे समालोचना करना ही गौण है। तथापि श्री. चतुर्वेदीजीने एक प्रकरण अलग लिखा है। वह उस पुस्तकका दूसरा भाग है व तृतीय भाग अध्यात्म-दर्शनके नामसे लिखा है जिसका विस्तार उनके ग्रथोको दृष्टिपथमें लानेसे इस पुस्तकमें बहुत कम मालूम पडता है। तथापि वह भाग महत्त्वका जरूर है। इस प्रकार इस ग्रंथको रचकर श्री चतुर्वेदी दोनो भाषाओंका सख्य बढ़ानेमें पूर्ण सफल हुए है। और आगे भी इन्होंने इस प्रकारके ग्रंथोंको लिखनेके लिये लेखकोके सामने इस पुस्तकरूपसे आदर्श रखा है, जिसका अनुकरण कुशल लेखक अवश्यमेव करेंगे—ऐसी हम आशा करते है। इति शम्।

निंबाळ
९-१-५४

रा. द. रानडे,
एम्. ए., डी. लिट्.

आशीर्वाद

धर्मप्राण भारतमें सन्तोंकी परम्पराका अभाव नही रहा है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत, दोनों ही ओर अनेकानेक सन्त हो चुके है। उत्तर भारतकी सन्त-परम्परामें कबीर, नानक, सूर, तुलसी आदिका बड़ा नाम है। दक्षिण-भारतके महाराष्ट्र-सन्तोंमें ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास प्रभृति महात्मा खूब विख्यात हैं। प्रस्तुत पुस्तकके लेखकने ऐसे दो सन्तोंका—तुलसीदास और एकनाथका—तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित करनेका प्रयत्न किया है।

यद्यपि श्री एकनाथमहाराजका आविर्भाव गोस्वामी तुलसीदासजीसे कुछ पीछे हुआ फिर भी दोनों सम-सामयिक कहे जा सकते हैं। दोनोंमें भाव-साम्यके अतिरिक्त कई प्रकरणोंमें चरित्र-साम्य भी है। संभव है कि दोनोंको परस्परकी रचनाएँ पढ़ने अथवा सुननेके अवसर भी मिले हों। क्योंकि दोनोंही अपने समयमें प्रसिद्धि पा चुके थे, दोनोंने पर्यटन खूब किया है और दोनोंका किसी न किसी प्रकार, काशीसे सम्बन्ध रहा है। परन्तु फिर भी उनकी रचनाओंसे प्रतीत यही होता है कि दोनोंका भाव-साम्य संस्कृत-भारती और भारतीय संस्कृतिसे प्राप्त हुई परम्पराका ही प्रभाव व्यक्त कर रहा है। दोनों सन्त थे और दोनोंके हृदयोंमें लोक-कल्याण-भावना विद्यमान थी; अतः दोनों एक दूसरेके विचार न जानते हुए भी समान रूपसे सोच भी तो सकते थे। वह जो हो; परन्तु दोनोंके तुलनात्मक विचारों और भावोंको इस प्रकार ग्रथित करके लेखक-महोदयने हिन्दी और मराठीके साहित्य-प्रेमियों तथा अध्यात्म-चिन्तकोंको बड़ी उपादेय सामग्री दे दी है इसमें कोई सन्देह नहीं।

पुस्तक प्रधानतः तीन परिच्छेदोंमें विभक्त है। प्रथम परिच्छेदमें दोनों सन्तोंकी जीवन-झाँकी दिखाई गई है, दूसरेमें उन दोनोंके काव्य-साम्यकी झलक है और तीसरेमें उन दोनोंके अध्यात्म-दर्शनकी चर्चा है। लेखक-महोदयने अच्छा ही किया जो दोनोंकी तर-तमताका मूल्यांकन

नहीं किया। सन्तोंके विषयमें कैसे कहा जाय कि कौन छोटा है, कौन बड़ा है !' को बड़ छोट कहत अपराधू।' उनका काव्य भी निसर्ग-सिद्ध प्रवाह ही समझिये जो कृत्रिमतासे दूर रहा करता है। साहित्यशास्त्री भले ही उसकी कलात्मकताके गुणदोषों और गुरुता-लघुताकी विवेचना करता रहे; परन्तु एक ऐसा लेखक जिसका उद्देश्य दोनोंके साम्यका परिचय मात्र ही देनेका है, उस प्रवाहके रसबिन्दु ही पाठकोंके समक्ष उपस्थित कर देनेमें अपने श्रमकी सफलता मानेगा। कदाचित् इसी उद्देश्यसे लेखक-महोदयने दोनोंके सिद्धान्त-विभिन्नताका भी कोई दिग्दर्शन नही कराया।

दोनों सन्तोंने राम और कृष्णके सम्बन्धमें रचनाएँ की हैं; परन्तु गोस्वामीजीकी राम-विषयक रचना बहुत प्रसिद्ध है और श्री एकनाथ महाराजकी कृष्णविषयक रचना। लेखक-महोदयने दोनों सन्तोंकी प्रायः सभी प्रधान रचनाओंसे उपयुक्त उद्धरण चुने है, यद्यपि महत्ता उन्होंने राम-विषयक रचनाओंको दी है। १३० पृष्ठोके छोटे ग्रन्थमें सभी विषयोंका विशद चित्रण हो नही सकता था; फिर भी जितना लिखा गया है उससे जान पड़ता है कि लेखक-महोदयने दोनों सन्त-कवियोंका अच्छा तुलनात्मक अध्ययन किया है और वे साम्यके सहारे तुलनीय अधिकसे अधिक सामग्री पाठकोंकी भेंट करनेमें समर्थ हो सके है। हिन्दी और मराठी एकदम पड़ोसी भाषाएँ है और यह आवश्यक है कि मराठीके साहित्य-प्रेमी हिन्दीकी रचनाओंका रसास्वादन कर सकें तथा इसी प्रकार हिन्दीके साहित्य-प्रेमी मराठी वाङ्मयकी माधुरीसे भिज्ञ हो सकें। प्रस्तुत पुस्तक इस उद्देश्यकी पूर्तिमें पर्याप्त सहायता पहुँचावेगी ऐसा मेरा विश्वास है। अतएव निश्चयही यह दोनों क्षेत्रोंमे समादृत होगी। मै चाहता हूँ कि इस प्रकारकी पुस्तकोंकी संख्यामें नित्य नूतन वृद्धि हो। राष्ट्र-भाषाके कल्याणके लिए ऐसा प्रयास सर्वथा अभिनन्दनीय है।

राजनादगांव (मध्यप्रदेश)
१–१२–५३

बलदेवप्रसाद मिश्र
एम्.ए., एल्एल्.बी., डी.लिट्.

आशीर्वाद

श्री. जगमोहनलाल चतुर्वेदी यांचे 'तुलसीदास व एकनाथ' हें हिंदी भाषेंतून लिहिलेलें लहानसें पुस्तक वाचलें. स्वराज्य प्राप्त झाल्यानंतर आपल्यासमोर ज्या अनेक समस्या निर्माण झाल्या त्यांतली एक भाषावार प्रांतरचनेच्या प्रश्नासंबंधानें निर्माण झाली आहे. आपल्या या विस्तीर्ण देशांत अनेक भाषा बोलणारे लोक असल्याने भाषावार प्रान्तरचना हा मोठा जिव्हाळ्याचा प्रश्न होऊन राहिला आहे या प्रश्नाच्या चर्चेत एक मोठी अडचण उत्पन्न होते ती या संशयामुळे की जर भाषावार प्रान्त झाले तर महत्प्रयासानें लाभलेली देशाच्या ऐक्याची भावना नाहीशी होईल, पुनः देशाचे तुकडे पडतील व ऐक्याच्या भावनेस कायमची मूठमाती मिळेल. पण ही भीति बाळगण्याचें फारसे कारण नाही. जर वेगवेगळ्या भाषिकाना एकमेकाची ओळख झाली व आपणा सर्वांचा आत्मा--सांस्कृतिक आत्मा--एकच आहे याची ओळख पटली तर ऐक्य नाहीसें होण्याचे कारण नाही. याचा मार्ग म्हणजे प्रत्येक भाषाभगिनीने आपल्या शेजारणीस आपल्या रत्नांचीं ओळख करून देणें. यायोगें दोन्ही भाषा बोलणाराना ज्ञान होईल की दोघांची जीवनमूल्यें एकच आहेत, असा प्रत्यय यावा. 'राष्ट्र एक म्हणून उभें रहावें,' याच कल्पनेनें कै. सानेगुरुजी यानी आतर भारतीची कल्पना भारतीयाच्या समोर मांडली. प्रस्तुतचें लहानसें पुस्तक या दृष्टीने पाहिल्यास एक मोठी समस्या सोडवण्याच्या प्रयत्नातील एक चागले अंग आहे, असें म्हणण्यास हरकत नाही.

भारतांत जरी अनेक भाषा बोलल्या जात होत्या व आहेत तरी भारत हा एक अखंड देश आहे याचें गमक भारतातील तत्त्वज्ञानाच्या मूलभूत कल्पना आसेतुहिमाचल आहेत. श्रीरामकृष्णांच्या कथा सर्व भाषांत गायिलेल्या आहेत. रामायण व महाभारत हीच सर्व भारतीयांची महाकाव्यें आहेत. श्री. जगमोहनलाल चतुर्वेदी यांनीं तुलसीदास व एकनाथ या दोन

थोर सत्पुरुषांचीं चरित्रें व काव्य व अध्यात्मविषयक माहिती एकच देण्यांत फार औचित्य साधलें आहे. सर्व जगांत बंधुभाव निर्माण करण्याचें सामर्थ्य संत-वाङमयांत आहे. तुलसीदास व एकनाथ हे महान् संत होत व यांचें वाङमय हें परमतत्त्वाला स्पर्श करणारें असल्यानें सर्व मानवांत बंधुभाव निर्माण करण्याचें यांत सामर्थ्य आहे. तेव्हां भारतांतील वेगवेगळ्या प्रान्तांत तें वाङमय बंधुत्व निर्माण करील यांत संशय कसला ? यांनीं तुलना करून मांडण्यास निवडलेले थोर पुरुष संत होते, येवढेंच नव्हे तर ते समकालीन होते. श्री तुलसीदास हे श्री एकनाथांपेक्षां पस्तीस वर्षांनीं वडील. जरी दोघे भिन्नप्रांतीय तरी श्रीकाशीक्षेत्रात दोघांचा वास झालेला. नाथ पैठणकडील पण त्यांचा भागवत ग्रंथ काशीत पुरा झाला, ही गोष्ट प्रसिद्ध आहे. सर्वांत महत्त्वाची गोष्ट म्हणजे दोघांनींहि रामकथेवर आपआपल्या भाषेंत उत्कृष्ट ग्रंथ लिहिले आहेत.

अशा या थोर कवीची तुलना करून देण्याचे सत्कार्य श्री. चतुर्वेदी यांनी केलें आहे व त्याबद्दल त्यांचें अभिनंदन करणें अवश्य आहे.

दोन्ही साधूंचें चरित्र, काव्य व अध्यात्म याचें थोडक्यांत वाचकांना दर्शन करून देण्याचा प्रयत्न यांत केलेला आहे. भाषा सोपी व विवेचन साधें व सरळ आहे. ओळख करून देण्याच्या दृष्टीनेंच हें पुस्तक तयार केलेलें असल्यानें स्वाभाविकच खोल तपशिलांत शिरण्याचा प्रयत्न करण्यांत आला नाही, हें चांगलें आहे. एकंदरींत प्रयत्न स्तुत्य आहे. यांनीं महाराष्ट्रांतील तर थोर पुरुषाविषयी अशीच पुस्तकें लिहून परभाषीयांस त्यांची माहिती करून द्यावी. त्यायोगें महाराष्ट्रीय संतांची तर सेवा होईलच. पण वर म्हटल्याप्रमाणें देशापुढील एक बिकट प्रश्न सोडवण्याचा अल्प कां होईना; पण रचनात्मक प्रयत्न करून देशाच्या उन्नतीस मदत केल्याचें श्रेय प्राप्त होईल.

पुणें
१३-११-५३

—शं. वा. दांडेकर,
सेवानिवृत्त प्राचार्य सर परशुरामभाऊ कॉलेज

निवेदन

बिधि हरि-हर कवि कोविद बानी । कहत साधु-महिमा सकुचानी ।
सो मो सन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि-गन-गुन जैसे ।

लेखकका इस पुस्तकके लिखनेका दृष्टिकोण समालोचनात्मक व समीक्षात्मक नही है । " सूर सूर तुलसी शशि " की लोकोक्तिके झंझटमें जानेका इस लेखकमें न साहस है और न बुद्धिबल ही । वह तो इस तत्त्व-ज्ञानका अनुयायी है कि एक ही आत्मा सब प्राणियोंमें अनुप्राणित है । " रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव । " अतः उसके लिए एकनाथ तुलसीदाससे भिन्न नही और तुलसीदास एकनाथसे भिन्न नही । वे एक ही आत्माके दो स्वरूप है । जिन तुलसी-नाथने हरिहरैक्यको प्रसारित व प्रमाणित किया उनके ऐक्यमें शंका करना कहाँतक युक्तियुक्त है ?

प्रस्तुत छोटेसे ग्रन्थमें श्रीएकनाथ व तुलसीदासके जीवन, काव्य और अध्यात्मका साम्य बतलानेका प्रयास किया गया है । लेखक इसमें कहाँतक सफल हुआ है इसका अनुमान तो सुविज्ञ पाठक ही कर सकेगे । सन्तोकी वाणीमें " सत्यं शिवं सुन्दरम् " सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होता है । अतः सन्तोंके विचार, भाषा-देश-काल बाधित नही होते । उनका धर्म मानवधर्म होता है और उनका अवतार मानवजातिके कल्याणके लिए होता है । जब विविध धर्मोके मूलतत्त्वोंमें साम्य पाया जाता है तो एकनाथ व तुलसीदासकी कृतियोंमें साम्य ढूँढ निकालना कोई कठिन काम नही है । कारण कि दोनों एक ही देश, धर्म व संस्कृतिके पुजारी थे । दोनोंका जन्म एकही-सी परिस्थितियोंमें हुआ । यद्यपि श्रीतुलसीदास श्रीएकनाथसे लगभग सैंतीस वर्ष बड़े थे और उन्होंने अपनी रामायण, भावार्थ-रामायणसे २५ वर्ष पहले लिखी तथापि दोनों समकालीन थे और दोनों एक ही भावसे प्रेरित थे—अर्थात् मृततुल्य समाजमें नवजीवन-सञ्चार करना—इतना ही नहीं दोनोंकी भाषाएँ भगिनी-भाषाएँ है, दोनोके स्रोत भी एक है । यदि तुलसीने

वाल्मीकि और अध्यात्म-रामायणको अपना मुख्य स्रोत बनाया तो एकनाथने वाल्मीकिको प्रधानता दी और अपनी भावार्थ-रामायणमें वाल्मीकिके मूल श्लोकोंको बीच-बीचमें उद्धृत किया है। पुराणोंका पुट तो दोनोंमें पर्याप्त है ही; परन्तु एकनाथी भावार्थ-रामायणमें अधिक। शास्त्रोंके तत्त्वज्ञानका गुम्फन इस प्रकार किया गया है मानो सुवर्ण मनकोंकी मालामें वर्ण-वर्णकी मणियाँ पिरोई गई है।

जिन उद्धरणोंको इस पुस्तकमें उद्धृत किया गया है वे तो ऐसे रत्न है जिनको किनारे ही बैठकर लेखकने प्राप्त किया है। रामायण अथाह रत्नाकर है जिसके गर्भमे न जाने कितने अमूल्य रत्न छिपे हुए है! जो चाहे गोता लगाए और इन रत्नोंको ढूँढ निकाले। बहुतसे विद्वानोने गोता लगाकर इन रत्नोको प्राप्त किया है और बहुतसे प्राप्त कर रहे है; परन्तु यह ऐसा भण्डार है जो सदा अपने रत्नोसे सम्पन्न रहेगा।

लेखक उन सब महानुभावोका अत्यन्त आभारी है जिन्होने अपने ग्रन्थोद्वारा इस महासागरका पुल बाँधकर सबके लिए इस मार्गको सुगम बना दिया है।

अति अपार जे सरितवर, जो नृप-सेतु करांहि।
चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जांहि॥

इस पुस्तकके लिखनेकी प्रेरणा लेखकको सन्त-हृदय श्रीबलवन्तराव घाटे सेशन जज औरङ्गाबादसे हुई जिनके सुयोगसे श्री स्वामी रामदास आनन्दाश्रम, श्री धुडामहाराज देगलूरकर, श्री. शं. वा. दाडेकर, डॉ. श. गो. तुळपुळे, श्री. न. र. फाटक प्रभृति सज्जनोंका दर्शनलाभ हुआ। श्रीतुलसीदासके शब्दोमे "पारसपरस कुधात सुहाई", श्रीनाथके शब्दोमें "घुरेते चन्दन होती। जाण संगती चन्दनाचे" अथवा श्रीज्ञानदेवके शब्दोमें "जैसा फुलाचे नि सांगातें। तान्तु तुरबिजे श्रीमतें" वैसी ही स्थिति मेरी हुई; नही तो कहाँ मै मतिमन्द और कहाँ श्रीएकनाथ व तुलसीदासके अपार ग्रन्थ! अतः मैं श्री बलवन्तराव घाटेको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। सन्त श्री. डॉ. रानडेने मेरी पुस्तककी प्रस्तावना लिखकर मुझपर जो अनुग्रह किया है उसका औपचारिक आभार प्रदर्शन करना धृष्टता होगी, कारण कि वाणीमें हृदयके भावोंको व्यक्त करनेकी क्षमता नही। कविरत्न श्री सत्यनारायणके शब्दोंमें

" प्रकट करनेको मनके भाव शब्द है शक्ति रहित सब आज " अतः गुरुवर्य डॉ. रानडेके प्रति मैं अपने मूक भावोसे ही आभार प्रदर्शन करनेके लिए विवश हूँ ।

म्हणूनि साचा तुज लागी । स्तुती ने देखेजी जगीं ।
मौनावांचूनि लेणें आंगीं । सुसीना मा ॥
स्तुति कांहीं न बोलणें । पूजा कांहीं न करणें ।
सन्निधीं कांहीं न होणे तुझां ठायीं ।

ज्ञा. अ. १८।२४।२५

आशा करता हूँ कि गुरुवर्य मेरे इन भावोको स्वीकार करेंगे । श्री धुंडामहाराज देगलूरकर और श्री रवीन्द्रका मैं अत्यन्त उपकृत हूँ जिन्होंने इस पुस्तककी पाण्डुलिपिको देखकर, उसे छपवानेकी अनुमति देकर प्रोत्साहित किया । सन्त श्री. दाडेकर और डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्रका मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होने आशीर्वादस्वरूप इस पुस्तकके सम्बन्धमें दो शब्द भी लिखे है । मेरे मित्र श्री. वसन्तराव धाड़वारकर, श्री. भालचन्द्र तैलङ्ग व श्री. विष्णुपन्त कुलकर्णी मेरे धन्यवादके पात्र है जिन्होने समय-समयपर आवश्यकीय परामर्श दिया है । श्री. शं. दा. चितळेका मैं ऋणी हूँ जिन्होने बडे परिश्रमसे इस पुस्तकको सर्वाङ्गसुन्दर रूप देकर सुविज्ञ पाठकोतक पहुँचाया है । मैं इस पुस्तकके प्रकाशक श्री एकनाथ संशोधन मन्दिर औरङ्गाबादका मनःपूर्वक आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनकी कृपासे ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है ।

अन्तमें भगवानसे यह प्रार्थना है कि जिस ज्योतिने मेरे हृदयको आलोकित किया है वह सारे विश्वको आलोकित करे ।

ओ३म् असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

औरंगाबाद
(दक्षिण)

—जगमोहनलाल चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

१ प्रस्तावना : डॉ. रा. द. रानडे
२ आशीर्वाद : डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र
३ आशीर्वाद : श्री. शं. वा. दांडेकर
४ निवेदन : श्री. जगमोहनलाल चतुर्वेदी

१ तुलसीदास और एकनाथके जीवनकी झांकी १–१८
तत्कालीन राजकीय व सामाजिक स्थिति... ... ... १
तुलसी-नाथका जन्म ४
बाल्यावस्था व शिक्षा-दीक्षा ५
ग्रन्थरचना ७
सब ग्रन्थोंका सार ८
संत व असंत वंदना ९
चमत्कार १०
धर्म व उपासना ११

२ एकनाथ और तुलसीदासके काव्यकी झलक २१–७४
उत्कृष्ट काव्य २१
वात्सल्य २३
स्वरूप-सौन्दर्य २४
वियोग-शृंगार २९
ईर्ष्या ३२
स्त्रीहठ ३४
कामलोलुपता ३५
कारुण्य ३७
पतिप्रेम ४१
शोक व करुणा ४४
शौर्य व बीभत्स ४८

सीता-संताप-शमन ५६
पतिविषयक संशय-रत्नमाला ५८
भारूड ६१
ढोंगकी निन्दा ६८
३ अध्यात्म-दर्शन ७७–१३०
ईश्वर-निरूपण ७७
सगुण व निर्गुण ८५
ईश्वरप्राप्तिके साधन ८८
संसारकी असारता ९७
संत-महिमा १०३
नाम-महिमा ११०
गुरु-महिमा ११७
भक्त-महिमा १२३
मनुष्य-देहकी महिमा १२७
भक्ति और मुक्ति १२८
अनन्य भक्ति १३०

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ॥
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

—(तुलसी रामचरितमानस)

तुलसी-वंदना

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरु-भ्राता पद वन्दे।
सेष सनातन बिपुल ज्ञान जिन पाइ अनन्दे॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय कलिमलहारी।
करि पोथी पर सही आदरेउ आप पुरारी॥
राखी जिनकी टेक मदनमोहन धनुधारी।
बालमीकि अवतार कहत जेहि सन्त प्रचारी॥
नन्ददासके हृदय-नयनको खोलेउ सोई।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई॥

(—नन्ददास)

धन्य भाग मम सन्तसिरोमनि चरनकमल तकि आयउँ।
बदन प्रसाद सदन दृगभरि लखि सुखसन्दोह समायउँ॥
दयादृष्टि ते मम दिसि हेरेउ तत्त्व-स्वरूप लखायो।
कर्म उपासन ज्ञानजनित भ्रम-संसय भूल नसायो॥
हरिलीला गायों तेहि सुनि तनु पुलकित मानस धीर।
सुधा समान बचन कहि पोषेउ सुमिरत सिय रघुबीर॥
श्री तुलसी सुचि सन्त-समागम अद्भुत अमल अनूप।
सूरदास जीवन-फल पायो दरसन जुगल स्वरूप॥

—(सूरदास)

यह खानि चतुष्फलकी सुखदानि अनूपम आनि हिये हुलसी।
पुनि सन्तनके मनभृंगनको अति मंजुल माल लसी तुलसी॥
अस मानुषके तरिबे कहँ 'तोष' भई भव-सागरके पुल-सी।
सब कामन-दायक कामदुहा सम रामकथा बरनी तुलसी॥

—(कविवर तोष)

नाथ-वंदना

'ओंवी'

नमिला शमिलास्यप्रद शांतिजलधि एकनाथ तो भावें ।
शोभावें ज्याचें यश विश्वीं ज्या देव वृंद लोभावें ॥

--(मोरोपंत)

'पद'

नमूं एकनाथपंत संत साधु भला रे ॥ ध्रु० ॥
प्रतिष्ठान अधिष्ठान । दयाभूत अनुष्ठान ।
उतरती इतर पितर पितृश्राद्ध पर्वणिला रे ॥ १ ॥
आवडिनें कावडिनें । सांवडिल्या पत्रावळि ।
गंधचंदनासि घांसि नंदनंदन राबविला रे ॥ २ ॥
दत्तात्रय धरूनि दार । रक्षि होऊनि चोपदार ।
चमत्कार हाचि फार । दासोपत चोजविला रे ॥ ३ ॥

--(अनाम कवि)

'पद'

सज्जनमन सुमेरु गुणनिधि एकनाथ ।
परम पुरुख परम भागवत अवतरे ॥ ध्रु ॥
नगरमनपट्टन तीरथमन गोदा-- ।
पुलिनपनघनतटनिकट निवास करे ॥ १ ॥
घन ब्रिद्रावन घन तरुवर कल्पवृच्छ ।
धन यन चरण न सोजी अजि अरति धरे ॥ २ ॥
होत पुरानश्रवण कीर्तन सुखविचार ।
सुख उपजत मुखतान अमृत वचन झरे ॥ ३ ॥

--(अमृतराय)

'ओंवी'

जडमूढ जें कां अज्ञान । त्यांसी तारावयालागीं पूर्ण ।
श्री एकनाथ नामाभिधान । प्रगट जाण झालेंसे ॥

--(ठाकुरदासबाबा)

'तुलसी-नाथ वंदना'

—(१)—

शंकरकी सेवा सों प्रसाद मिलो मोकोंजो,
वाको बखानवे को रसना सकुचाई है।
प्रेमबेल बोयी हियेमहँ जो 'रघुनाथ',
सींच कै वाको 'सेवादास' पनपाई है।
कालके प्रभाव सो 'ठिठुर सों गयो हुतो,'
'रामचन्द्र' वाको नवचेतना दिलाई है।
अब तो 'जगमोहन' कष्टन को अन्त भयो
फूल औ' फलन सों बेल सरसाई है।

—(२)—

भाषाको बल नाहिं बुद्धिको गुमान नाहिं
कीन्हीं ढिठाई गुन सन्तनको गायो है ॥ १ ॥
जानिकै अजान-टेक, तुलसी दीन्हों भरोस
वे ही इह ग्रन्थको मोसों लिखवायो है ॥ २ ॥
दैकें बरदान जिन 'गावबा' को दीन्हों यश
वेही 'जगमोहन' को मारग बतायो है ॥ ३ ॥
तुलसी-नाथ चरणोंमहँ मस्तक नमाऊं
जिनकी कृपासों यह ग्रन्थ लिख पायो है ॥ ४ ॥

तुलसीदास और एकनाथ

के

जी व न की झां की

तत्कालीन राजकीय व सामाजिक स्थिति

जब कि भारतका शौर्य मरणासन्न था और जब उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह अपने पराक्रमसे अपना जीवन-निर्वाह करता, ईश्वर-नियमानुसार भारतमे दो महान् आत्माएँ अवतरित हुई, जिन्होंने भारतमें एक नवजीवन संचार किया, निराशामें डूबते हुए समाजको आशारूपी नौका प्रदान की, निराकार और अज्ञेय ईश्वरके स्थानपर साकार और लोकरजक ईश्वरका रूप प्रस्तुत किया, जो उनके कष्टोंको दूर करनेके लिये समर्थ था। इन दो महान् आत्माओमेसे एक है गोस्वामी तुलसीदास और दूसरे है एकनाथ महाराज।

मध्यकालीन भारतमें मुगलोंकी सत्ता अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी। उत्तरी भारतके राजपूत राजाओने मुगल बादशाहोको अपना सम्राट स्वीकार कर लिया ओर उनके साथ तादात्म्य हो गये। इनका रक्त ओर शौर्य जो आपसी वैमनस्यमें प्रदर्शित होता था अब इस विदेशी राज्यकी जड़ोको सींचने लगा। जिन कनक, कान्ता और सकीर्णताके प्रयासमें इन राजाओंने अपनी जडोको खोखला किया उन्ही काचन और कामिनीको अपने रक्षणार्थ स्वतः अपने स्वामियोंके चरणोंमें अर्पण किया। उनका उन्नत मस्तक नत हो गया। अब उनमें यह सामर्थ्य न थी कि चारण उनका यश-गान करते। भारत परतत्र हुआ। इस शारीरिक परतंत्रताने जनताकी मानसिक स्वतत्रताको अधोमुखी बनाया। जनताके सामाजिक और धार्मिक बन्धन ढीले हो गये। तुलसीदासने उस समयकी सामाजिक स्थितिका यो वर्णन किया है.—

" वर्णाश्रम-धर्म नष्ट होने लगा। संसारसे वेदोंकी मर्यादा उठ गई। प्रजा पाखण्ड और पापमें लीन होकर पतित हो गई और अपने-अपने रंगमें रंग गई। शूद्र द्विजोंके बराबर अपनेको समझने लगे और यह कहकर बलपूर्वक अपना सम्मान कराने लगे कि ब्रह्मको जाननेवाला ब्राह्मण होता है, न कि जन्मसे। कलियुगमें पापाचरणसे धर्म भ्रष्ट होने लगा और सद्ग्रन्थ लुप्त हो गए। दम्भियोंने अपनी रुचिके अनुरूप बहुत-से ग्रन्थ प्रचलित किए।"

आश्रम बरन धरम विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने-अपने रंग रई है॥
बादहिं सूद्र द्विजन सन, हम तुमते कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आँख देखावहिं डाटि॥
कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, गुप्त भए सद्ग्रन्थ।
दम्भिन निज मति कल्पिकर, प्रकट कीन्ह बहु पन्थ॥

उधर उत्तरी भारतकी जो अवस्था थी वही हालत यादवकालीन स्वराज्यके अस्त होनेके बाद महाराष्ट्रकी हुई। महाराष्ट्रपर मुसलमानी राजसत्ता स्थापित होनेके पश्चात् यहाँ भी सामाजिक और धार्मिक अवनतिके लक्षण दिखाई देने लगे। परकीय और परधर्मीय राजसत्ताके कारण हिन्दू संस्कृतिको भारी धक्का लगा। क्षत्रियोंने अपना युद्धधर्म छोड़कर वैश्यधर्म स्वीकार किया। इनमेंसे जो विशेष महत्त्वाकांक्षी लोग थे उन्होने सरकारी नौकरीको अपनी जीविका बनाया। पहले ब्राह्मण जो क्षत्रियोंपर आश्रित थे अब निरालम्ब हो गये। वैश्यो और शूद्रोंके व्यापार मन्द पड़ गये। सगी माँके मरनेके बाद सौतेली माँके अधिकारमें जो हालत बालकोंकी होती है वही हालत चारों वर्णोके लोगोंकी हो गई। अपना पौरुष दिखानेकी कोई जगह शेष न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि जनताकी चित्तवृत्ति संकुचित व स्वार्थी बन गई। उदर-पोषणही एकमात्र धर्म बन गया। ब्राह्मण निस्तेज व कर्मभ्रष्ट बन गए। ढोगी संन्यासी, जोगी-जंगम और

फ़कीर उपदेश करने लगे। एकनाथने उस समयकी सामाजिक स्थितिका यों वर्णन किया है:—

"इस कलियुगमें द्विजोंने अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको छोड़ दिया। वेदोंको जनताका आधार न मिलनेके कारण वे पृथ्वीमें लुप्त हो गए। अब मनुष्योंकी ऐसी भावना बन गई है कि वे ब्राह्मणका तीर्थ लेनेको बहुत बुरा समझते है; परन्तु बड़े प्रेमसे भंग पीते है। अपने हाथसे मोरीकी कीच निकालनेका कष्ट तो सहन करते है; परन्तु मूर्तिकी पूजा व सेवासे जी चुराते है।

वे लोग जो संसारको ज्ञानका उपदेश देने है और कहते है कि हम साधु है; परन्तु जिनके हृदयमें दया और धर्म नही है उन्हें केवल ढोंगी समझना चाहिए।"

या कलियुगाभीतरीं। कर्म सांडिलें द्विजवरी।
लोपले वेद निर्धारीं। गुप्त जाहले क्षितीसी॥
ब्राह्मणाचें तीर्थ घेतां त्रास मोठा। प्रेमें पितो घोटा घटघटां॥
हातें मोऱ्या उपसी कष्ट करी नाना। देवाच्या पूजना कंटाळतो॥
जगालागीं ज्ञान सांगती, म्हणती आम्ही साधू।
पोटीं दया धर्म नाहीं, ते जाणावे भोंदू॥

तुलसीदासने अपने ग्रन्थमें लिखा है कि जब जब धर्मकी हानि होती है और अधर्मी राक्षसोंकी वृद्धि होती है—जो अपनी अनीतिसे ब्राह्मण, गौ और पृथ्वीको कष्ट देने लगते है—तब तब भगवान विविध शरीर धारण करके सज्जनोंके दुःखोंको दूर करते है।

जब जब होइ धर्मकी हानी। बाढ़ति असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र-धेनु-सुर-धरनी॥
तब तब प्रभु धर विविध शरीरा। हरहिं दयानिधि सज्जन-पीरा॥

श्री एकनाथने इसी भावका इस प्रकार वर्णन किया है:—

"संतलोग धर्मकी रक्षाके लिए अवतार लेते है और अपने आचरणसे संसारको सन्मार्गपर लगाते है।"

संतांच्या विभूती। धर्मालागीं अवतरतो ।।
धर्मरक्षणा कारण। साधु होताती अवतीर्ण ।।
जगा लावावें सत्पथीं। हेचि साधूंची पै कृती ।।

तुलसी और नाथ दोनों ही परम भक्त, उपदेशक, प्रचारक और सुधारक थे। इन दोनों ही के जीवन-वृत्तमें इतनी समानता पाई जाती है कि हम इस निश्चयपर पहुँचते हे कि तुलसी-एकनाथ एक आत्माके दो शरीर थे। तुलसी एकनाथसे भिन्न नही और एकनाथ तुलसीसे भिन्न नही।

तुलसी–नाथका जन्म

तुलसीका जन्म यमुनाके किनारे राजापुर ग्राममें संवत् १५५४ में श्रावण शुक्ल सप्तमीको हुआ। इनके पिताका नाम आत्माराम दुबे और माताका नाम हुलसी था। इनके पिता राजापुरके राजगुरु थे। एकनाथका जन्म गोदावरीके तीरपर पैठणमे ई. स. १५३२ मे हुआ। एकनाथके पिताका नाम सूर्यनारायण था। इनका सम्बन्ध हरिभक्त भानुदासके कुलसे था। ये दोनो महापुरुष अशुभ मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुए और एक वर्षके भीतरही दोनों माताके सुखसे वंचित हो गए। तुलसीदास और एकनाथ दोनोने अपने जन्म और कुलके सम्बन्धमें अपने कुछ ग्रन्थोंमें परिचय दिया है।

तुलसीदासने अपने जन्मके सम्बन्धमें लिखा है :—

"जन्मते ही माता-पिताने मुझे छोड़ दिया। ब्रह्माने भी भाग्यमे कुछ अच्छा न लिखा था। मेरे माता-पिताने मुझे एक तुच्छ कीड़ेकी भाँति त्याग दिया। मै भिक्षावृत्ति करनेवाले ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न हुआ। आनन्दोत्सवके समय ही मेरी ग्रह-दशा जानकर बेचारे माता-पिताको अत्यन्त दुःख हुआ।"

"मातपिता जग जाय तज्यो, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।"
"तनु तज्यों कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिता हू।"
"जायो कुल मंगन बधावनो सुनि, भयो परिताप पाप जननी जनकको।"

एकनाथने अपने संबन्धमें यो लिखा है :—

"मेरा जन्म मूल नक्षत्रमे हुआ जिससे मेरी माता और पिताको अत्यन्त दुःख हुआ। मूल नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण मै अपनी माता और पिताके विनाशका कारण बना। मूल नक्षत्रकी शान्ति की गई; परन्तु इसका परिणाम यही हुआ कि मेरी माता और पिता दोनो चल बसे।"

मुळीच्या मुळीं एका जन्मला। माय-बापें थोर धाक घेतला ॥ १ ॥
कैसें मूळ नक्षत्र आलें कपाळा। स्वयें लागलों दोहींच्या निर्मूळा ॥ २ ॥
शान्ति करितां अवघ्यांची शान्ति।
मुळीं लागोनियां लावली ख्याति ॥ ३ ॥
एका जनार्दनीं मुळींच्या गोठी। मायसकट सकळा बापचि घोंटी ॥ ४ ॥

मूल नक्षत्रमे उत्पन्न होनेवाले बालक अशुभ समझे जाते है। माँ-बापकी दृष्टिसे तो यह बात तुलसी और एकनाथ दोनोके लिए सत्यही निकली; परन्तु संसारके लिए ये दोनों बालक शुभदायक और कल्याणप्रद हुए।

बाल्यावस्था व शिक्षा-दीक्षा

तुलसीकी माता हुलसीकी मृत्युके बाद हुलसीकी दासी चुनियाँने पांच वर्षतक तुलसीका लालन-पालन किया। पर जब चुनियाँ साँपके काटनेसे मर गई तो कहते है गौरामाईने ब्राह्मणीका रूप धर रामबोला (तुलसी) का पोषण दो वर्षतक किया। इसके पश्चात् नरहर्यानन्दने रामबोलाकी रक्षाका भार ग्रहण किया। उन्होंने रामबोलाको तुलसीका नाम दिया और तुलसीके सब संस्कार किए और शूकर क्षेत्रमें रामकी कथा सुनाई। संवत् १५६१ में नरहरि तुलसीदासको लेकर काशी आए। यहाँ शेष-सनातनसे मिले और उन्होने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। तुलसी शेष-सनातनके संरक्षणमें पन्द्रह वर्ष रहे और इस कालमे उन्होंने इतिहास, पुराण और काव्यकला सभी कुछ पढ़ा और सीख लिया। जब शेष-सनातनकी मृत्यु हुई तो तुलसीदास राजापुर आकर रामकी कथा कहकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। संवत् १५८३ में तुलसीका वैवाहिक जीवन

आरम्भ हुआ। पाँच वर्षतक ये इस प्रपंचमें फँसे रहे। स्त्रीके चुपचाप पितृ-गृह चले जानेपर तुलसी जब उसके पीछे ससुराल जाते है तो स्त्रीकी भर्त्सना मिलती है। वह कहती है :—"हे स्वामी! आपको शर्म नही आती कि इस घोर अन्धकार और भयावनी रात्रिमें यहाँ चले आए! धिक्कार है ऐसे प्रेमको! हाड़-मांसके इस शरीरसे तुम्हें इतना प्रेम है! यदि तुम्हें श्रीराम-जीसे इतना प्रेम होता तो संसारके बंधनोसे मुक्त हो जाते।"

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु नाथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेमको कहा कहहुँ हौं नाथ॥
अस्थिचर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम महँ, होति न तो भव-भीति॥

इस भर्त्सनासे तुलसी वैराग्य ले लेते है। उनकी स्त्रीकी मृत्यु संवत् १५८९ में हो जाती है। इसके बाद तुलसीने लगभग पन्द्रह वर्षतक तीर्थ-यात्रा और पर्यटन किया।

एकनाथकी मातापिताकी मृत्युके बाद इनका लालन-पालन इनके वृद्ध दादा और दादीने किया। इनके दादाका नाम चक्रपाणि था। चक्र-पाणिने छठें वर्ष एकनाथका उपनयन संस्कार किया। एकनाथने थोड़े ही दिनोमें पुरुषसूक्त, रुद्र, पवमान कण्ठ कर लिया। बारह वर्षकी आयुमें भारत-भागवतकी भक्त-कथाएँ पढ़ डाली। तेरहवें वर्ष नाथ, जनार्दनस्वामीके दर्शनके लिए देवगढ़ पहुँचे और वहाँ जनार्दनस्वामीकी सेवामें रहकर योग-साधन करने लगे। इसके पश्चात् गुरु-शिष्य दोनो यात्राके लिए निकले। ये पहले चन्द्रावती नगरीमें पहुँचे, जहाँसे पञ्चवटी और त्र्यंबकेश्वरकी यात्रा संपूर्ण की। जनार्दनस्वामी देवगढ वापिस आए और नाथको उत्तर व दक्षिणके तीर्थ करनेके लिए आदेश दिया। नाथ जब पैठण पहुँचे तो गुरुका पत्र मिला कि वृद्ध दादा-दादीकी सेवा करो। पच्चीस वर्षकी आयुमें नाथ पैठण आए और वहाँ रहकर भजन-कीर्तन करने लगे। जनार्दनस्वामीने इन्हें पैठण आकर दर्शन दिए और इनके दादाकी विनती स्वीकार कर नाथको विवाह करनेकी अनुमति दी। इनका विवाह गिरिजासे

हुआ। दादा-दादी अपने नाती व नत-बहूके जीवन-सुखसे सतुष्ट हुए और फिर उन्होंने स्वर्गवास किया।

ग्रन्थरचना

विद्याध्ययन, तीर्थयात्रा और पर्यटन-द्वारा ज्ञान-सपादन करनेके बाद तुलसी व नाथने गुरुकी आज्ञानुसार ग्रन्थरचना प्रारम्भ की। तुलसीदासने रामायणकी रचनाके संबन्धमें लिखा है कि यद्यपि मेरे गुरुने बार-बार मुझे श्रीरामकी कथा सुनाई परन्तु उस समय मेरी आयु कम थी; इसलिए थोड़ी ही समझमें आई। अब इसी कथाको मै (हिन्दी) भाषामे लिखूंगा, जिससे मुझे ज्ञान प्राप्त होवे ।

यदपि कही गुरु बारहिं बारा, समुझ परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषाबद्ध करब मैं सोई, मोरे मन-प्रबोध जेहि होई ॥

गोदावरीके उत्तर-तीरपर चन्द्रावती नामकी नगरीमें चन्द्रभट्ट नामके एक सत्त्वशील ब्राह्मण रहते थे। रातमे चतुःश्लोकी भागवतपर जनार्दन-स्वामीने चन्द्रभट्टके मुखसे पुराण सुना। जनार्दनस्वामीको यह अत्यन्त पसंद आया और नाथको आज्ञा दी कि देशी भाषामें इस ग्रन्थपर टीका लिखो।

" देशी भाषेंत या ग्रन्थावर तू टीका लिही।"

तुलसीने हिन्दी कविताकी पीयूषधारा बहाई और एकनाथने मराठी काव्यकी अमृतमयी सरिता बहाई। एकका प्रभाव गगा और यमुनाके किनारेसे हुआ और दूसरीका गोदा-गंगाके तीरसे।

कवि-कुल-शिरोमणि तुलसीदासने चौपाई छंदको अपनाया तो कवि-कुल-मुकुट-मणि एकनाथने ओवी छन्दमें रचना की।

तुलसीदासके मुख्य ग्रन्थ बारह हैं और नाथके मुख्य ग्रन्थ सात है। तुलसीदासके ग्रन्थोंमें रामचरित-मानस, विनय-पत्रिका, राम-गीतावली, कृष्ण-गीतावली, कवितावली, दोहावली मुख्य है और बाकी ग्रन्थ छोटे-छोटे

है। इन छोटे-छोटे ग्रन्थोंमें रामलला नहछू, पार्वती-मगल, वैराग्य-संदीपनी, जानकी-मगल, हनुमान-चालीसा और रामाज्ञा उल्लेखनीय है।

नाथके सात मुख्य ग्रन्थोंमेंसे भागवत, भावार्थरामायण, रुक्मिणी-स्वयंवर मुख्य है। शेष ग्रन्थ छोटे-छोटे है। जैसे :—चतुःश्लोकी भागवत, हस्तामलक, आनन्दलहरी, स्वात्मसुख।

तुलसीदासके इन ग्रन्थोमें रामचरित-मानस आदर्श-दर्शक किवा चरित्र-विषयक ग्रन्थ है और विनय-पत्रिका भक्ति-अध्यात्मका उत्कृष्ट ग्रन्थ है। रामचरित-मानस भारतप्रसिद्ध गन्थ है। गरीबोकी झोपडीसे अमीरोके महलोंतक इसका सम्मान है। यह प्रत्येक नर-नारी, बाल-वृद्ध ग्रामीण-नागरिकके कण्ठका हार बन गई है। हिन्दीमे रामचरित एक अप्रतिम ग्रन्थ है।

हिन्दीमें जो स्थान आदरकी दृष्टिसे रामचरित-मानसका है वही स्थान मराठीमे नाथ-भागवतका है। परन्तु कथानक और आदर्श-दर्शक ग्रन्थकी हैसियतसे रामचरित-मानस व भावार्थ-रामायण समकक्ष है। तुलसीदासकी रामायण संवत् १६३१ मे अयोध्यामे प्रसिद्ध हुई। उसी वर्ष नाथ-भागवत काशीमें निर्मित हुई।

सब ग्रन्थोंका सार

तुलसीने रामायणके आदिमे यह बतला दिया है कि 'इसमे वेद, शास्त्र, पुराणों और कुछ अन्य ग्रन्थोंका सार जनसमुदायकी भाषामे दिया गया है।'

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यत्, रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तस्सुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा, भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥

इसी भावको एकनाथने यों प्रकट किया है:—

"भागवत सब शास्त्रोंका सार है। यह वेदोंमें निरूपित परम भक्ति और पुराणोका मायका है।"

जें सकल शास्त्रांचें सार। जें सकल वेदांचें गर्हिवर।
जें सकल पुराणांचें माहेर। ग्रंथासि आलें ॥

उपरोक्त चार पक्तियोमे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ग्रन्थमें वेद, शास्त्र और पुराणोंका सार है। तुलसीदासने अन्य ग्रन्थों व गुरुवाक्योंके सारको बतलानेके लिये "क्वचिदन्यतोऽपि" लिखा है। परन्तु नाथ-महाराजने इसका स्पष्टीकरण यो किया है:--

"जो सब ग्रन्थोका सार है, जो ज्ञानका भी ज्ञान है, जो गुरु-शिष्यका गुह्य उपदेश है, उसे जनार्दनस्वामीने मुझे एकान्तमे दिया जिसका अनुभव मै निरन्तर करता हूँ।"

जें सकळ ग्रन्थांचें ग्रन्थार्थ। जें सकळ दृश्यांचें दृश्यत्व।
तो गुरु-शिष्यांचा गुह्यार्थ। चांवळलों गुज॥
ते गुज एकाएकपणें। मज दीधलें जनार्दनें॥
ते निरन्तर अनुभवणें। अनुभविये घेतुका॥

संत व असंत वंदना

ग्रन्थमें इष्टदेव व सज्जनोकी वंदना करनेके पश्चात् असन्तो किवा निन्दकोकी भी वदना की गई है। भावार्थ-रामायणमे नाथ-महाराज कहते है कि 'जो ग्रन्थकी निन्दा करता है अथवा वंदना करता है वे दोनोही मेरे लिये ब्रह्मके समान है। निन्दक सगी माँ है जो निन्दा करके मेरे ऊपर कृपा करती है; अतएव प्रशसकसे अधिक कृपालु होती है।'

ग्रन्थ निन्दिती अथवा वन्दिती। ते दोघे आम्हां ब्रह्ममूर्ती॥
हे श्रीजनार्दनाची युक्ति। उपदेश एकान्तीं निजगुह्यार्थ॥
कथा निन्दिती वन्दिती जनीं। ते माउली माझे दोनी॥
निन्दक ते सखी जननी। मजलागूनी कृपाळू॥

भागवतमें भी नाथने कहा है कि 'इस ग्रन्थका जो कोई आदर करता है, उपेक्षा करता है अथवा जो केवल निन्दा करता है वह मेरे लिये ब्रह्म एवं सद्गुरुके समान पूज्य है।'

या ग्रन्था आदर करती। अथवा जे कां उपेक्षिती।
केवळ जे कोणी निन्दती। तेही आम्हां ब्रह्ममूर्ति सद्गुरुरूपें॥

तुलसीदासने भी रामायणमें सन्त और असन्त दोनोंकी वंदना की है। तुलसीदासने दुष्टोको सक्रोध शेषनागकी उपमा दी है जो सहस्रों मुखोसे दूसरेके दोषोंका वर्णन करते है और फिर राजा पृथुकी उपमा दी है कि जो सहस्रों कानोसे पराये पापोका श्रवण करते है। ऐसे दुष्ट मनुष्योंको भी—जो दूसरोका गुण न सुन सकते है और न वर्णन कर सकते है—तुलसीदास नमस्कार करते है।

तुलसीदास कहते हैं कि 'मै सन्त और असन्त दोनोंको नमस्कार करता हूँ। क्योकि मेरे लिये दोनो समान है। कारण कि दोनों दुःखदाई है। सन्तोका विछोह हृदय विदीर्ण करता है और असन्त मिलनेपर दारुण दुःख देते है। अन्तर इतनाही है।

बंदौं खल जस शेष सरोषा। सहस बदन बरणहिं परदोषा।
पुनि प्रणवौं पृथुराज-समाना। पर अघ सुनै सहस दश काना।
बंदौं संत-असंतन-चरणा। दुखप्रद उभय बीच कछु बरणा।
बिछुरत एक प्राण हर लेहीं। मिलत एक दारुण दुख देहीं॥

चमत्कार

तुलसी और नाथ दोनोके संबन्धमे कुछ अलौकिक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। कहते है कि तुलसीदास जन्म लेते ही "राम राम" बोलने लगे। इसीलिए इनक नाम "रामबोला" पड़ा। जन्मके समय इनके मुँहमें बत्तीसों दाँत मौजूद थे। ये रोये नही। चुनियाँके मरनेके बाद गौरामाईने इनका लालन-पालन किया। शिवजीने इन्हें काशीमें दर्शन दिए। इन्हे प्रेतका दर्शन हुआ जिसके द्वारा इनकी हनुमानसे भेंट हुई। चित्रकूटमें राम-लक्ष्मणने दर्शन दिए। जब ये मथुरा गए और कृष्णके दर्शन करने लगे तो इनके यह कहनेपर कि 'हे नाथ! आजका आपका स्वरूप बड़ा सुन्दर है; परन्तु तुलसीदास अपना मस्तक धनुषबाण-धारी रामको ही झुकाएगा।'

कहा कहों छबि आजकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुषबाण लेहु हाथ॥

कृष्णने तुलसीको रामरूपके दर्शन दिए। तुलसीके संबन्धमें यह भी प्रसिद्ध है कि इन्होंने एक लड़कीको लड़का बना दिया और एक विधवा स्त्रीके पतिको फिर जीवित कर दिया। पत्थरके नन्दीको हत्यारेके हाथसे प्रसाद-पान कराया।

नाथके संबन्धमें भी बहुतसे चमत्कार प्रचलित है। नाथको दत्तात्रेय और कृष्णने दर्शन दिए। श्रीखंडयाके रूपमे श्रीकृष्ण इनके घरका पानी भरते थे और पूजाके लिए चन्दन घिसते थे।

श्रीएकनाथसदनीं माधवजी सर्व काम हें करितो।
स्वकरें चन्दन घांसी, गंगेचें पाणि कावडीं भरितो॥

तुलसीके समान नाथ-महाराजके संबन्धमें भी यह कथा प्रचलित है कि इन्होंने पत्थरके नन्दीको कड़बी खिलाई। देवगढ़की निकटकी पहाड़ियोंमे नाथ जब समाधि लगाते थे तो नाग अपना फन फैलाकर धूपसे अुनकी रक्षा करता था। निपटमूर्ख गावबाको नाथमहाराजका यह बरदान व आशीर्वाद कि इनकी असमाप्त रामायणकी वह पूर्ति करेगा, एक चमत्कार ही है। श्रीएकनाथका निर्याण भी कुछ कम चमत्कारिक नही। जैसे कोई तीर्थयात्राके लिए तैयार होता व जाता है वैसेही नाथने कीर्तन व भजन करते-करते गोदावरीमें प्रवेश किया और जनसमूहके देखते-देखते अन्तर्धान हो गए।

तुलसीने अपना आखिरी जीवन काशीमें गंगाके किनारे बिताया तो नाथने पैठण (दक्षिण काशी)में गोदावरीके तीरपर अपनी लीला दिखाई।

धर्म व उपासना

तुलसीदास वैष्णव धर्मके अनुयायी थे। उनके जीवनपर नरहरि व रामानन्दकी छाप थी। इन्होने शैव और वैष्णवोके सघर्षोको—जो उस समय उग्र रूप धारण कर चुके थे—मिटानेका सफल प्रयत्न किया और वैष्णव धर्मको इतना व्यापक रूप दिया कि उसमें शैव, शाक्त और पुष्टि-मार्गी सरलतासे सम्मिलित हो गये।

तुलसीदासने श्रीरामके मुखसे यह कहलवाया है कि 'शिवद्रोही बनकर जो मेरा भक्त कहलाना चाहता है वह मुझे सपनेमें भी प्राप्त नहीं हो सकता। शंकरजीसे विमुख रहकर जो मनुष्य मेरी भक्ति चाहता है वह मूर्ख व नारकी है। शंकरका प्रिय हो और मेरा द्रोही अथवा शिवका द्रोही होकर मेरा दास बने ऐसा मनुष्य घोर नरकमें कल्पभर वास करेगा।'

सिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहिं न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ मति थोरी॥
संकर प्रिय मम, द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरी। घोर नरक महुँ बास॥

एकनाथमहाराज भी भागवत धर्मके अनुयायी थे। उनके जीवनपर जनार्दनस्वामी और ज्ञानदेवकी छाप थी। इन्होने भी शैव और वैष्णवोमें सामंजस्य पैदा किया। ये दत्तात्रेयके उपासक थे जो शिव व विष्णु दोनोके अवतार माने जाते है। उनकी उपासनामे भेदबुद्धिके उत्पन्न होनेका अवकाश ही नहीं।

तुलसीदास प्रेम-भक्तिके उपासक थे। भक्ति और ज्ञानके अन्तरको बतलाते हुए काक भुशुण्डिने इस प्रकार गरुडको उत्तर दिया कि 'ज्ञानी और भक्तमे कोई अन्तर नही; दोनोही संसारके दुःखोको दूर करते है।'

"भगतहिं ग्यानहिं नहीं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।"

"परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि भक्ति स्त्री है और ज्ञान पुरुष है। यह नियम है कि स्त्री, स्त्रीके रूपको देखकर मोहित नही होती। माया और भक्ति दोनों स्त्रीवर्ग है; इसलिए माया भक्तको बाधा नही पहुँचा सकती।"

ग्यान विराग जोग विग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरि जाना॥
मोहन नारि नारिके रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु प्रभु दोऊ। नारि वर्ग जानहिं सब कोऊ॥

ऐसा ही विचार एकनाथमहाराजने प्रकट किया है। वे कहते है कि 'हे प्रभु! मुझे भक्ति व प्रेमरहित ज्ञान नही चाहिए। ज्ञानका अभिमान करना व्यर्थ है! मुझे तो प्रेम-सुख दो। बिना प्रेमके मेरा चित्त समाधान नही पाता। बिना प्रेमके ज्ञान ऐसा नीरस प्रतीत होता है जिस प्रकार विधवा स्त्री शृङ्गार करनेपर श्रीहीन दिखाई देती है। प्रेम अति मधुर है, इसका सुख तो अनुभवहीसे ज्ञात होता है।"

भक्ति प्रेमाविण ज्ञान नको देवा। अभिमान नवा तयामाजीं॥
प्रेम-सुख देई प्रेम-सुख देई। प्रेमेंविण नाहीं समाधान॥
रांडवेनें जेवीं शृंगार पै केला। प्रेमेंविणा जाला ज्ञानी तैसा॥
एका-जनार्दनीं प्रेम अति गोड। अनुभवी सुखाड जाणतील॥

तुलसी-मतानुसार 'भक्ति-मार्ग ज्ञानकी अपेक्षा सुलभ व सरल है। तुलसीदासने एक तरफ अद्वैतवादका प्रतिपादन किया है; परन्तु दूसरी ओर ईश्वर व जीव दोनोंको अलग माना है।' वे काक भुशुण्डिसे कहलवाते है कि 'हे गरुड! सेवक व सेव्य-भावके बिना संसारसे तरना कठिन है।'

सेवक-सेव्यभाव बिन, भव न तरिय उरगारि।

तुलसीदासने अपने ब्रह्म-निरूपणमे मायाका भी वर्णन किया है। वे कहते है कि 'जीव, ईश्वरका अंश व अविनाशी है। यह चेतन और शुद्ध है और सहज ही सुखी रहता है। यही जीव मायाके वशमें इस प्रकार बन्धनको प्राप्त हुआ है जिस प्रकार तोता और बन्दर। यद्यपि दोनों स्वतत्र है। तोता नलिका-यन्त्रको अपना सहारा समझकर नही छोड़ता और बन्दर मुट्ठी बन्द रखनेके कारण बन्धनमें पड़ जाता है।

अविद्या अथवा माया-द्वारा जीव अपनेको ईश्वरसे भिन्न मानने लगा है। इस अविद्याको दूर कर दिया जाय तो जीव सच्चिदानन्द-रूपको प्राप्त हो जाता है।' जीव और ईश्वरमें भेद करते हुए तुलसी-दासने लिखा है कि 'जीव परतन्त्र है, ईश्वर स्वतन्त्र है। जीव अनेक है; परन्तु ईश्वर एक है।'

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायावश भयउ गुसाई। बँध्यो कीर मरकटकी नाईं॥
"जड़-चेतन ग्रन्थि पड़ गई। जदपि मृषा छटत कठिनई।"
परवश जीव, स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥

तुलसीदास भक्तिद्वारा ईश्वरकी प्राप्ति मानते हैं जिसके लिए श्रवण, कीर्तन, ब्राह्मण-सेवा, संत-समागम, मन-कर्म-वचनसे निष्काम भक्तिहीका उन्होने उपदेश दिया है। रामनामको उन्होंने बड़ा महत्त्व दिया है। वे कहते हैं :—

"रामनामका मणिदीप जिह्वारूपी देहरीके दरवाज़ेपर रखो तो अन्दर और बाहर ज्ञानका प्रकाश मिल सकेगा। रामका नाम ब्रह्म और रामसे भी बड़ा है। रामनाम श्रेष्ठ वरदानोको देनेवाला है। इस रामनाम-रूपी मन्त्रको शिवजीने शतकोटि रामायणसे शोध कर निकाला है।"

राम-नाम-मणि-दीप धरु, जीह-देहरी-द्वार।
तुलसी भीतर-बाहिरौ, जो चाहसि उजियार॥
ब्रह्म रामते नाम बड़, वरदायक वर दानि।
रामचरित शत कोटि महँ, लिय महेश जिय जानि॥

तुलसीदास ससारको ईश्वरमयही देखते हैं। वे कहते हैं कि 'मैं सब संसारको सीता और राममय समझकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ' :—

"सीयाराममय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि युग पानी॥"

तुलसी रामके परम भक्त थे; परन्तु वैरागी।

एकनाथ ज्ञान-भक्तिके उपासक थे। कीर्तन, भजन, हरिस्मरण-द्वारा ही ये ईश्वरको रिझाते थे। ये अपने कीर्तनमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि सेवक-सेव्यका द्वैतभाव रहही न पाता था। नाथमहाराज भी निष्काम भक्तिके पुजारी थे और संसारको ईश्वरमय देखते थे।

"जन तोचि जनार्दन, एका-जनार्दनीं भजन।"

नाथका तत्त्वबोधक अभंग भी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करता है। वे कहते हैं कि 'अपना हो चाहे पराया, माता हो या पिता सब ही जीव ईश्वरके रूपमें है और संसारमे जीवन एक चमत्कार है।'

"स्वजन जनार्दन, विजन जनार्दन।
जन ते जनार्दन, होऊनी ठेले ॥
जनक जनार्दन, जननी जनार्दन।
जीव तो जनार्दन, जीवन कळा ॥"

श्रीनाथने राम और सीताकी एकता दिखाकर जीव व ईश्वरकी एकता प्रतिपादन की है। भावार्थ-रामायणमे राम स्वतः हनुमानजीसे कहते है :—

"मै सर्वव्यापी परमेश्वर हूँ और सीता भी सम्पूर्ण चिच्छक्ति है। सीतासे मै अणुमात्र भी अलग नही हूँ। जिस प्रकार नटेश्वर स्वरूपमे आधा स्वरूप शिवजीका और आधा पार्वतीका होता है; परन्तु शरीर एकही होता है इसी प्रकार सीता और रामचन्द्र भिन्न होते हुए भी एकही है।"

"माझें स्वरूप चैतन्य घन।
सीता चिच्छक्ति सम्पूर्ण ॥
सीतेसी मज वेगळेपण।
अणुप्रमाण असेना ॥
अर्धनारी नटेश्वर।
दो स्वरूपीं एक शरीर।
तेवीं सीता श्रीरामचन्द्र।
अभिन्नकार भिन्नत्वें ॥"

तुलसीदासने भी राम और सीताकी एकता बताकर प्रकृति एव पुरुष अथवा ईश्वर व जीवकी एकता स्थापित की है :—

"जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जलकी लहरके समान कहनेमें अलग अलग है, परन्तु वास्तवमें एक है उन सीतारामजीके चरणोको

में वंदना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुतही पिय है। श्रुतियोका पालन करनेवाले राम, परमात्मा है और सीताजी उनकी माया है जो परमात्माके इशारेपर सृजन, पालन और हरण करती है। श्रीरामचन्द्रजी मायाके पति है। जो परमात्मा अजन्मा, अद्वैत, नामरहित, अरूप व गुणरहित, है उसने भक्तोंके लिए मनुष्यरूपमें अवतार लिया है।"

गिरा अर्थ जलबीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ॥
वन्दौं सीता राम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥
श्रुति-सेतु पालक राम तुम, जगदीश माया जानकी
जो सृजति जग पालति हरति,
रुख पाय कृपानिधानकी ॥
अज अद्वैत अनाम, अलख रूपगुणरहित जो ।
माया पति सोइ राम, दास हेतु नर-तनु धरेउ ॥

नाथने भी रामनाम-स्मरणको उचित महत्त्व दिया है। वे कहते हैं कि 'वाणीसे रामनाम लेते हुए यदि मन विषयकी ओर दौडे तो इसे भजन नहीं वरन् विस्मरण समझना चाहिए। यदि नाम व रूपका मेल न हो तो यह वाणीका उपहास है। यदि नाम और रूपके योगसे ध्यान किया जाय तो नामसे भगवान प्रकट होते है।'

नाम वदतां हे वैखरी ।
वित धांवे विषयावरी ॥
कैसें होतां हे स्मरण ।
स्मरणामाजीं विस्मरण ॥
नामरूपा नाहीं मेळ ।
नुस्ता वाचेचा गोंधळ ॥
एका-जनार्दनीं नाम ।
नामीं प्रगटे आत्माराम ॥

साधु-संतों और गुरुकी तुलसी व नाथ दोनोंने ही महिमा गाई है। नाथने कहा है 'कि जिस ब्रह्मको बुद्धि, मन व इन्द्रियें पहचान नहीं सकतीं,

जो विवेकद्वारा बोधगम्य नहीं है, जहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँच सकता है, जिसका निरूपण वेद नही कर सकते उस ब्रह्मका बोध गुरुकी कृपासे संभव है।'

जें काळासी नाकळे।
जें देखो न सकती बुद्धयादि सकळें।
जेथें विवेकाचे मंद डोळे।
गुरु आज्ञेवीण॥
जे न प्रकाशे तरणीं।
जें न बोलवें वेदवचनीं॥
येवढीये वस्तुचा गुरु दानी।
दयाळुत्वें॥

तुलसीदासने इसी अभिप्रायको यों स्पष्ट किया है :—

"बिना गुरुके ज्ञान प्राप्त नही हो सकता और बिना ज्ञानके वैराग्य नही होता। वेद और पुराण गा-गाकर कहते है कि हरि-भक्ति-बिना सुख प्राप्त नही हो सकता। बिना सतोषके किसीको विश्राम नहीं मिलता। जैसे बिना जलके नाव नही चलती, चाहे करोडो जतन कर डालो।

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विरागु बिनु।
गावहिं वेद पुराण, सुख कि लहहि हरि भक्ति बिनु।
कोइ विश्राम कि पाव, तात सहज सतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय।

तुलसी व नाथकी गुरु व सन्तोके प्रति श्रद्धा अप्रतिम है। एकनाथ सन्तोके जूतोको लेकर चलना अपने लिए भक्तिका भूषण समझते है। वे कहते है कि 'ससार-सागरको पार करनेके लिए यह जहाजका काम देते है' :—

सन्त जाती हरि-कीर्तना।
त्यांचे वाहीन मोचे-वहाण॥
भव-सिंधूचें तारूं।
तेणे उतरूं पैल-पारु॥

तुलसी रामभक्तके जूतोंके लिए अपने शरीरकी चमड़ीतक देनेके लिए उद्यत हो जाते हैं। वे कहते हैं कि 'जिसके मुँहसे धोखेमें भी रामनाम निकलता है उसके जूतोंके लिए मेरे शरीरका चमड़ा काम आए तो मै अपना बड़ा भाग्य समझता हूँ।'

तुलसी जाके बदनते,
धोखेउ निकसत राम ॥
ताके पगकी पगतरी,
मेरे तनुको चाम ॥

'नाथ' ने प्रपंच-परमार्थ दोनोका समन्वय बड़ी सुन्दरतासे किया है। ये गीता-प्रतिपादित कर्म-ज्ञान-भक्तिके सामंजस्यको भली भाँति हृदयंगम कर चुके थे, जिसका आदर्श जनताके सामने उन्होंने अपने जीवन-वृत्तसे उपस्थित किया। इनकी क्षमा, उदारता, शांति, भक्ति-वत्सलताने इनके वैरियोंको भी अन्तमे इनका गुणग्राहक बना दिया। वर्णाश्रम-धर्मके परिपोषक होते हुए भी नाथने बहुजन व सर्वोदय-समाजका नेतृत्व अपने हाथ लिया।

एकनाथ और तुलसीदास

के

काव्य की झलक

उत्कृष्ट काव्य

एकनाथकी गणना केवल साधुओहीमें नही की जाती अपितु वे उच्च कोटिके कवि भी है। उनके लोकप्रिय ग्रन्थ उनकी काव्य-रचनाकी साक्षी दे रहे है। उनके ग्रन्थोके कुछ स्थल तो ऐसे है कि रसिक जन उनमें तल्लीन होकर अवर्णनीय आनन्द अनुभव करते है। एकनाथमे काव्य-रचनाकी स्वाभाविक और तात्कालिक स्फूर्ति थी। इसीलिए उनकी कविता रसिकोको विशेष प्रिय प्रतीत हुई। अध्यात्मसदृश गहन विषयोपर भी एकनाथने चलते-चलते हजारो ओवी और अभग रच डाले। ये कविताएँ उनकी विलक्षण कल्पनाशक्तिकी सूचक है। इनमेसे बहुत-सी कविताएँ तो गोदावरीके बालुकामय तीरपर उपदेश करते-करते रची गई है। बहुत-से पद तो जब वे कीर्तनमे निमग्न थे उसी समय उनके मुखसे निकले है। नाथ-जैसी कवित्वशक्तिका स्वाभाविक ओज बहुत थोडे कवियोमे पाया जाता है। उनकी कविता सीधी-साधी और बोधगम्य है। इसमे प्रसाद गुण सर्वत्र पाया जाता है। एकनाथका कोई ग्रन्थ उठा लीजिए, उनकी कवितामें कृत्रिमता कही दिखाई न देगी। भाषा मधुर, शुद्ध, सरल, प्रभावशील और वर्णनशैली रोचक है। पाठक जैसे-जैसे पढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसकी चित्तवृत्ति विकसित होती जाती है और ग्रन्थ छोड़नेको जी नही चाहता। एकनाथने ज्ञानेश्वरकालीन प्राचीन और क्लिष्ट शब्दोका प्रयोग अपनी भाषामे नही किया; नहीं तो आज भी इन अपरिचित शब्दोकी भरमार मराठी भाषामें पाई जाती। उस समय जब कि मराठी भाषा उपेक्षित अवस्थामे थी भागवत और रामायणसदृश उत्कृष्ट ग्रन्थोंके रचयिताकी विद्वत्ता, काव्यशक्ति और साहसको श्लाघ्य ही मानना पड़ेगा।

स्वतंत्र कविता करनेमें एकनाथ जितने कुशल है उतनेही एक भाषासे दूसरी भाषामें सरस अनुवाद करनेमें भी वे सिद्धहस्त हैं। संस्कृत काव्यका मराठी काव्यमें अनुवाद करनेकी कुशलता उनमें अच्छी पाई जाती है। एकनाथ संस्कृत भाषाके पण्डित थे। उनमें सस्कृतमें कविता करनेकी क्षमता थी। उस कालमे संस्कृतमें कविता करनेकी परिपाटी थी; परन्तु जनसाधारण प्रायः सस्कृतसे परिचित न थे। इसलिए अनपढ़ लोगोको संस्कृत ग्रन्थके रहस्य बतानेके लिए इस कविने भागवतसदृश महत्त्वपूर्ण ग्रन्थका विषय प्राकृत जनोको सुगम करनेके लिए सब काव्य प्रसाद गुणयुक्त मराठीमें किया है। मूल अर्थ स्पष्ट करनेके लिए एक-एक श्लोकपर कई अध्याय लिखे है और वेदान्तसदृश कठिन विषयको भी अत्यन्त मनोरंजक बना दिया।

एकनाथके उपलब्ध ग्रन्थ सात है जिनके दो भेद है--अध्यात्म-विषयक और चरित्रविषयक। भावार्थ-रामायण और रुक्मिणी-स्वयंवर चरित्रविषयक ग्रन्थ है। एकनाथी भागवत, स्वात्मसुख, चतुःश्लोकी भागवत-टीका, हस्तामलक, आनन्दलहरी अध्यात्मविषयक ग्रन्थ है। जिनकी बुद्धि अध्यात्मविषयक ग्रन्थोमें प्रवेश नही कर सकती ऐसे पाठकोके लिए भावार्थ-रामायण और रुक्मिणी-स्वयवर-जैसे रोचक ग्रन्थोको एकनाथने तैयार किया है। इन ग्रन्थोंमें स्थल-स्थलपर भिन्न-भिन्न प्रसंगोका कविने इतना सुन्दर वर्णन किया है कि ग्रन्थ पढ़ते-पढते हर्ष, शोक, आनन्द, आश्चर्य, करुणा, प्रसन्नता गाम्भीर्य आदि वृत्तियोकी छाप अन्तःकरणपर पड़े बिना नही रहती। रामायणमे रामचन्द्रके गुण, स्वभाव, पराक्रम पढते ही यह प्रतीत होता है कि राम नीति, सदाचार, शान्ति, वात्सल्य, प्रेम, आनन्द और शौर्यकी जीती-जागती मूर्ति ही है। भरत और लक्ष्मणके सम्बन्धमें दिए हुए स्थलोको पढिए; तो सच्चे बन्धु-प्रेम और प्रीतिका चित्र आपके सामने आकर खड़ा हो जाता है। मन्थरा और कैकयीका पारस्परिक सभाषण, कैकयी-द्वारा दशरथकी भर्त्सना, भरतको राज्य स्वीकार करनेके लिए कहा गया बुद्धिवाद पढिए; तो प्रतीत होगा कि कुटिलता, कुबुद्धि, मत्सर, द्वेष इत्यादि दुष्ट गुणयुक्त राक्षस भी मनुष्यके रूपमें संसारमें जन्म लेते है। वनवासके समय राम और सीताके पारस्परिक प्रेमयुक्त संभाषण, उनकी विरह-व्यथाके हृदयवेधक उद्‌गार और

पवित्र आचरण पढ़िए; तो बोध होगा कि संसारमें नीतिसम्पन्न प्रेमपूर्ण दम्पति कैसे सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं ! एकको ज़रा-सा कष्ट हो तो दूसरेके प्राण कैसे व्याकुल हो जाते हैं ! एकनाथने चरित्रविषयक स्थलोंको रुचिकर बनानेके लिए भिन्न-भिन्न रसों और अलंकारोंका प्रयोग किया है । नीचे एकनाथके काव्यके ऐसे कुछ उद्धरण दिए जाते हैं । यथासंभव तुलसीदासके काव्यसे उनकी तुलना भी की जाएगी ।

वात्सल्य

एक समय विश्वामित्र ऋषि राजा दशरथके पास आए और उन्होंने उनके दोनों पुत्रोंको यज्ञ-रक्षाके लिए माँगा । राजा दशरथ मुनिके वचनको न टाल सकते हैं और न राम-लक्ष्मणको मुनिके साथ ही भेज सकते हैं । विश्वामित्रके वचन सुनकर राजाके मनमें अनेक भाव उत्पन्न होने लगे । उनका शौर्य जाता रहा और सारा शरीर काँपने लगा । सर्पके सिर काँटा चुभनेपर अथवा कुण्डलीकार साँपकी पूँछ टूटनेपर जो दशा सर्पकी होती है, अथवा जो दुःख मछलीको जलसे बाहर होनेपर होता है वैसाही दुःख राजाको राम और लक्ष्मणके वियोगमें अनुभव होता था । बन्दरके मुँहके चनो अथवा सूमके धनके समान राजा दशरथका मन राममें फँसा हुआ था । सूम अपने प्राणोंको छोड़ सकता है; परन्तु धनको नहीं छोड सकता । वही दशा राजा दशरथकी रामके प्रति थी । जिस प्रकार भिखारी अपने टूटे-फूटे बरतनोंके चोरी जानेपर अत्यन्त दुःखी होता है—कारण कि वह बरतनोंको अपनी सम्पत्ति ही समझता है—इसी प्रकार दशरथ रामचन्द्रको अपनी अलौकिक सम्पत्ति समझते थे ।

"ऐकोनि ऋषीचें वचन । गजबजलें रायाचें मन ॥
वीर्य गेलें हरपोन । कम्पायमान सर्वांगीं ॥
सर्पकपाळीं कांटा नेहटे । कां साप-सुरळीचें पुच्छ तुटे ॥
मासा जळावेगळा फुटे । तैसें दुःख नाटे रायासी ॥
चणे वानरा गालीचे । कां धन जैसें कृपणाचें ॥
भाणें नेलें भणगाचें । तैसें रायाचें मन श्रीरामीं ॥

राजा दशरथकी व्याकुलताके ये पाँच दृष्टान्त कितने उपयुक्त और प्रतिदिनके अनुभव और निरीक्षणके है ! तुलसीदासने राजा दशरथकी दशाका यों वर्णन किया है :—

" इस अप्रिय वाणीको सुनकर राजाका हृदय काँपने लगा और मुँह फीका पड गया। फिर वे बोले—'हे विप्र ! बुढ़ापेमें मुझे चार लड़के मिले है। आपने सोच-विचारकर यह बात नही कही। पृथ्वी, गो, धन, कोष जो आप माँगें, मै सहर्ष दूँ। हे मुनीश्वर ! शरीर और प्राणसे बढकर कोई वस्तु प्यारी नही है, किन्तु वे भी पलमें दे सकता हूँ। यद्यपि सब पुत्र मुझ प्राणोंके समान प्रिय है तथापि हे मुनि ! श्रीरामचन्द्र नही दिए जाते।' "

" सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय-कम्प-मुख द्युति कुम्हलानी॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी। विप्रवचन नहिं कहेउ विचारी॥
माँगहु भूमि, धेनु धन, कोषा। सर्वस देउँ आजु सह रोषा॥
देह-प्राणतें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष इक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहिं प्राणकी नाईं। राम देत नहिं बनै गुसाईं॥ "

दोनो कवियोके भावोमे कितना साम्य है ! कुछ चरण तो ज्यो-के-त्यो प्रतीत होते है। उदाहरणार्थ—" कम्पायमान-सर्वांगी " और " हृदय-कम्प-मुख द्युति कुम्हलानी। " फिर " गजबजले रायाचे मन " और गीतावलीके " रहे ठगि-से नृपति सुनि मुनिवरके बयन " की भी तुलना कीजिए।

स्वरूप-सौन्दर्य

स्वरूप-सौन्दर्यका वर्णन भी एकनाथने जगह-जगह किया है। अहल्याकी सुन्दरताका वर्णन कविने यो किया है :—

" ब्रह्माने तीनो लोकोकी सुन्दरताको बटोरकर एक कन्या निर्माण की जो अहल्या नामसे प्रसिद्ध हुई। उसका शरीर ऐसा कोमल और सुकुमार था कि चन्द्रमाकी किरणे भी उसे शल्य-सी चुभती थी। पद्मिनीकी कान्ति उसके सामने फीकी पड़ जाती है। उस तन्वंगीका शरीर आकाशसदृश मृदु है। उसके अंगको स्पर्श करते ही मन और इन्द्रियें चञ्चल हो उठती है। उसके

अधरपानमें अमृतसे अधिक मिठास है। उसके मुखको देखकर आँखें प्रफुल्लित होती हैं। उसके मुखसौन्दर्यकी शोभा और शरीरकी कान्तिके सामने चन्द्रमा म्लानमुख हो जाता है और सन्यासी मूर्च्छित और निरीह हो जाता है। उसके रूप-लावण्यको देखकर विवेक जाता रहता है। उसकी अत्यन्त मनोहरतापर आँखें टकटकी बाँधे देखती रहती हैं और धैर्य टूटने लगता है।"

" त्रैलोक्यींचें बरवेपण। ब्रह्मयानें येकवटोनी आपण।
स्वयं कन्या केली निर्माण। अहिल्या जाण तीस नांव॥ १४॥
शरीर अत्यन्त सुकुमार। खुपों शकती चन्द्रकर।
पद्मगपद्मिणी तीपुढे निबर। निजांगें अरुवार नभापरिस॥ १५॥
तिचें होतांची स्पर्शन। मनादि इन्द्रियां गुदगुल्या पूर्ण।
फिकें अमृताचें गोठपण। तिचें बरवेपण देखोनी॥ १६॥
देखोनि तीचिया मुखासी। अत्यन्त सुख डोळ्यांसीं।
ते मुखीं झाले क्षेत्र संन्यासी। आन पहावयासी नावडे॥ १७॥
अत्यन्त सौन्दर्याची शोभा। चन्द्र लोपे अंगप्रभा।
देखोनि लावण्याचा गाभा। विवेकाचा उभा प्राण जाय।
तिसी होतां डोळे भेटी। धैर्याची विरे गांठी।
बरवेपणें अत्यन्त लाठी। देखल्या दृष्टि उपडेना॥ १९॥

शृंगारका कैसा मार्मिक वर्णन है! हमारे साधु, स्वभावगत वैराग्यशील होते हुए भी, कवि-हृदय रखते हैं और प्रेमी जनोंके गूढ हृदयगत भावोंके पूर्ण परीक्षक हैं। तुलसीदासने अहल्याकी सुन्दरताका वर्णन तो नहीं किया है; परन्तु २४ वीं ओवीमें जिस अलंकार और भावका वर्णन एकनाथने किया है वैसाही तुलसीदासने सीताकी सुन्दरताके सम्बन्धमें प्रदर्शित किया है.—

" नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै।
विधि विरचे वरूथ विद्युत छटनिके॥ "
" संग लिए विधु बैनी बधू, रतिको जेहि रंचक रूप दियो है।"
(कवितावली)

यदि एकनाथके ब्रह्मदेव तीनों लोकोंकी सुन्दरताको बटोरकर अहल्याका निर्माण करते है तो तुलसीदासके ब्रह्मा सीताजीके अंगके उबटनसे विद्युत्-समूहके सौन्दर्यका सृजन करते है अथवा सीताके रूपसे थोडा-सा सौन्दर्य लेकर रतिको परम सुन्दरी बनाते है ।

सौन्दर्य-वर्णनका दूसरा उदाहरण देखिए । जनकपुरीमें स्वयवरके लिए अनेक राजा सभामण्डपमें आकर बैठे है । प्रचण्ड चाप देखकर प्रेक्षकोंकी छाती दहल उठती है । इतनेहीमें अलंकृत सीता सखियोके साथ सभामण्डपमें पधारीं । उस समय सीताजीकी सुन्दरताका वर्णन एकनाथने इस प्रकार किया है : —

" चन्द्रमा पूर्णमासीको ही पूर्ण दिखाई देता है; परन्तु सीताका मुख सदा पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभा देता है । चन्द्रमामे राहुका बिम्ब पड़नेसे कभी-कभी ग्रहण पडता है, परन्तु सीताके मुखपर सदा रामका बिम्ब रहता है (सीता सदा रामके दर्शन करती रहती है)। चन्द्रमे कलक होता है; परन्तु सीताजीका मुख निष्कलङ्क है । सीताजीके मुखके दर्शनसे भक्तजनोके दु:ख दूर हो जाते है । "

" चन्द्र पौर्णिमेसीच पूर्ण । मुखचन्द्र तो संपूर्ण ।
चन्द्रा-राहूचें पूर्वी ग्रहण । येथें नित्य ग्रहण श्रीरामीं ।।१६।।
चन्द्रबिम्बास कलंक । मुखचन्द्र निष्कलङ्क :
देखतां सीतेचें श्रीमुख । होती निर्दु:ख भावार्थी ।।१७।।

कवि सीताके मुखको चन्द्रमाकी उपमा देता है, परन्तु चन्द्रमामें बहुत-से दोष है, जिनसे जानकीका मुख विमुक्त है । अतएव चन्द्रमाके इन दोषोका वर्णन करता है । तुलसीदासजी भी सीताके मुखको चन्द्रमाकी उपमा देनेमे सकुचाते है, कि बेचारा चन्द्रमा सीताजीके मुखकी बराबरी नही कर सकता : कारण कि चन्द्रमाविषका भाई है, कलकी है, दिनमे मलीन रहता है, घटता बढ़ता है विरहीको दुख देता है राहुभी मौका पाकर ग्रस लेता है । चकवा-चकवीको शोक देनेवाला है । कमलका द्रोही है ।

" जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलङ्क ।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द्र बापुरो रङ्क ।।
घटै बढ़ै बिरहिन दुखदाई, ग्रसै राहु निज सन्धिहिं पाई ।
कोक शोकप्रद पङ्कज द्रोही, अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही ।।

इधर एकनाथ फिर सीताके मुखको चन्द्रमाकी उपमा देकर पूर्णोपमा-द्वारा सादृश्य स्थापित करते हैं। चन्द्रमाके चारो ओर नक्षत्र होते हैं; तो सीताके मुखके चारों ओर सिर और कानोंपर मोतीके अलङ्कार शोभित हो रहे हैं। सीताके मस्तकपर रामके प्रेममें रँगे हुए सुरंग कुकुमका मळवट (कुंकुमका लेप) है।

चन्द्रमामे धब्बे होते हैं। सीताके मुखपर कस्तूरीका मळवट लगा है और उसपर कुंकुमकी बिंदिया है जो मुखचन्द्रकी शोभा बढ़ा रही है। सीताके मस्तकपर लगी हुई मळवट और बिंदिया उसके अखण्ड सुहागकी सूचना दे रही है। जानकीके मस्तकपर लगी हुई चन्द्राकार खौर ऐसी प्रतीत होती है मानो क्षयरोगी चन्द्रमा जानकीके मस्तकपर जाकर इसलिए चिपक गया है कि वह नीरोग हो जाय।

" चन्द्रीं नक्षत्रें पुढें मागें । तैसीं तानवडें मोतिलगें ।
कुंकुम सुरंग राम रगे । तोचि निजांगें मळवट ॥ १८ ॥
चन्द्रबिंबीं काळिमेचा काट । तैसा कस्तूरीचा मळवट ।
मुखचन्द्रीं मिखे चोखट । त्यावरी बोट कुंकुमाचें ॥ २४ ॥
श्रीराम रंग अति सुरंग । तेणें रंगे रंगले कुकुम चांग ।
अहेवपण तेणें अभंग । निढळीचें अंग शोभवी शोभा ॥ २५ ॥
चन्द्र सदा क्षयरोगी । तेणें व्हावया निरोगी ।
जडला जानकीच्या अंगीं । जाला सवेगीं अर्धचन्द्र ॥ २६ ॥

उधर तुलसीदास सीताकी सुन्दरताकी उपमाके लिए बहुत-से उपमानोंकी तलाश करते हैं। वे सरस्वती, पार्वती, लक्ष्मी और रति किसीको इस योग्य नहीं पाते। कारण कि सरस्वती वाचाल, पार्वती अर्द्धांगी और रतिके पति शरीररहित हैं और लक्ष्मीको विष और वारुणी अपने दोनों भाई प्रिय हैं। वे ऐसी लक्ष्मीको सीताके लिए उपमा देनेमें संकोचपूर्वक उद्यत होते हैं जिसको सुन्दरता एवं अमृतके समुद्रसे मथकर निकाला जाय। समुद्र-मन्थनके लिए परम रूपमय कच्छपको आधार बनाया जाए, शृंगाररूपी मन्दराचलकी रई बनाई जाए। इस रईको

शोभारूपी रस्सीमें लपेटा जाए और कामदेव स्वयं अपने कर-कमलोसे इस रस्सीको पकडकर मथन करे।

" गिरा मुखर तन अर्द्ध भवानी ॥ रति अति दुःखित अतनु पति जानी ॥
विष वारुणी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि वैदेही ॥
जो छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई ॥
शोभा रजु मन्दर शृंगारू। मथै पाणि पंकज निज मारू ॥
यहि विधि उपजे लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल ॥
तदपि सँकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल ॥"

तुलसीदासजीने सीताका नख-शिख वर्णन नही किया है। कारण कि वे उन्हें जगत्-जननी समझते थे और जननीके शृगार-वर्णनको अमर्यादित समझा जाता है। वे कहते है :—

" सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदम्बिका रूप गुण खानी ॥"

एकनाथकी १८ वी ओवीको पढकर व्रजके एक ग्राम-गीतका स्मरण आ जाता है। इसमे मोती अथवा मोतियोसे जडे आभूषणोसे मुखकी ज्योतिको जगमगाते हुए बताया गया है। यह ग्राम-गीत १८ वी ओवीके पहले दो चरणोके समझनेमें पूरकका काम करेगा :—

" पाटी पारि माँग मुक्ताहल, सीस फूल सिर सोहै।
वेनाकी छबि कहँ लौं बरनौ, देखत ही मन मोहै ॥
जुगल करण तरमन जड़ाउ, जगमगत जोति अति राजै।
नैनन काजर अति छबि लागे, चितवन चितको मोहै ॥"

इसी प्रकार मखवट (मळवट) का भी उल्लेख एक ग्राम-गीतमे मिलता है —

" मखवट दुरी माथेपर आई, गोरोचन तिलक लिलार।
बड-बड़री बड़ी आँखें बनाकी चितवन मन हर लेइ ॥"

१८ वी ओवीमे वर्णित उपमाका प्रयोग सूरदासने श्रीकृष्णकी सुन्दरताका वर्णन करते हुए बडा ही सुन्दर किया है। वे कहते है कि श्रीकृष्णके मस्तकपर नीली, सफेद, पीली और लाल मणियोसे जटित आभूषण ऐसे प्रतीत होते है मानो शनि, शुक्र, गुरु और मगल चन्द्र-मुखके साथ-साथ शोभा देते है' ——

नील स्वेतपर पीत लाल मनि, लटकनि भाल रुनाई ।
सनि गुरु असुर देव-गुरु मिलि मनु. भौमसहित समुदाई ।।

वियोग-शृंगार

भावार्थ-रामायणमें वियोग-शृंगारके बहुत-से स्थल है। मारीच राक्षसको मारकर जब राम आश्रममे वापिस आते है तो कुटीको खाली देखते है। जब इधर-उधर देखनेपर सीताका पता न चला तो यह समझकर कि धोखा हुआ रामका अन्त:करण शोकसे व्याकुल हो उठा। उनके नेत्रोमे आँसू भर आए और दु:ख असह्य होनेके कारण वे मूच्छित हो पृथ्वीपर गिर पडे। उस समयके दु:खद प्रसगका कविने जो वर्णन किया है उसे देखिए ——

"सीताके विरहमे 'हाय सीता! हाय सीता!' कहते हुए श्रीरघुनाथजी अति दु:खी हुए और बेसुध हो गए। वे वनमे पागलोकी तरह सीताकी खोजमे घूमने लगे। वे कही रुक जाते थे और कही वेगसे चलने लगते, कही रोते और कही गिर पडते थे। 'सीता! सीता!!' कहकर बडे दु:खसे रामने पुकारा, फिर, लक्ष्मणसे कहने लगे कि हे सखा! तुम चुप बैठे क्या देख रहे हो?" ——

"मूर्छापन्न मूर्छे आंत । हाय हाय सीता म्हणत ।
सीता-विरहें श्रीरघुनाथ । दु:खाभिभूत अतिदु खी ।। ८९ ।।
हा हा सीते! हा हा सीते!! म्हणोनि पाहे सभोंवते ।
न देखोनियां सीतेतें । वनीं वनान्तरीं परिभ्रमे ।। ९० ।।
कोठे अडखळे कोठें उडे । कोठें रडे कोठें पडे ।
सीताविरहें झाले वेडे । पाहे चहूंकडे जानकी ।। ९३ ।।
सीता! सीता!! म्हणोनि देखा । अति आक्रोशें मारी हांका ।
लक्ष्मण तूं माझा सखा । उगाचि तूं कां पाहतोसी ।। ९४ ।।

"रामचन्द्रजी वृक्षोंको देखकर कहने लगे कि हे पर्वतस्थ वृक्ष ! तुम्हारी दृष्टि दूरतक जाती है; इसलिए तुम मेरे हृदयके सन्देहको निश्चित ही दूर करने योग्य हो। लाल लाल नेत्रोंवाली, बिम्बोष्ठी, सुन्दर नासिकावाली, सुकुमारी, पीताम्बरधारी, कमरमें रत्नजड़ित करधनी पहने हुए सीताको क्या तुमने देखा है ?"

" पर्वतींचे वृक्ष हो । तुम्ही दुरी देखतां पहा हो ।
तरी माझ्या हृदयींचा सन्देहो । निःसन्देहो तुम्ही करा ॥ १०१ ॥
आरक्त नेत्र आरक्त अधर । सुन्दर सुनासिक सुकुमार ।
कटिं रत्नाढ्य कटिसूत्र । पीताम्बरधारी जानकी ॥ १०४ ॥"

तुलसीदासजीने भी इसी स्थलपर विप्रलम्भ-शृंगारका सुन्दर वर्णन किया है। उनके राम भी वनके पक्षियों, मृगों, भौरोंसे पूछते है कि ' क्या तुमने मृगनयनी सीताको देखा है ? इसके बाद तुलसीदास उपमेयको न बताते हुए उपमानद्वारा सीताके प्रत्येक अंगकी सुन्दरताका वर्णन करते है। वे कहते है कि " हे जानकी ! तुम्हारे न रहनेसे आज खंजन, शुक, कपोत, मृग मछली, भौरोके समूह और चतुर कोयल सब प्रसन्न है। कुन्दकी कली, अनार, बिजली, कमल शरद् ऋतुकी पूर्णिमाका चन्द्रमा, नागिन, वरुणपाश, कामदेवका धनुष, हंस और सिह आज अपनी प्रशंसा सुननेके योग्य बने है। श्रीफल, सुवर्ण केलेके वृक्ष सब प्रसन्न है और सब आज निःसंकोच व निःशंक है। मानो हे जानकी ! तुम्हारे बिना सबको अप्रतिम राजही मिल गया है। हे सीता ! हे सीता ! तुम इनके गर्वको क्यों कर सहन करती हो ? शीघ्र प्रगट क्यों नही होती ?" श्रीरामचन्द्रजी महा-विरही और अतिकामीकी भाँति इस प्रकार सीताको ढूँढते फिरते है।

"हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम देखी सीता मृगनयनी ॥
खंजन शुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
कुन्द कली दाड़िम सुदामिनी । कमल शरद शशि उरग गामिनी ॥
वरुण पाश मनोज धनु हंसा । जन केहरि निज सुनत प्रशंसा ॥
श्रीफल कनक कदल हरषाहीं । नेकु न शंक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । किमि सहि जात अनख तोहिं पाहीं ॥
यहि विधि बिलपति खोजत स्वामी । मनो महा विरही अति कामी ॥"

इसके पश्चात् विरहमें व्याकुल रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं:— "हे सौमित्र! सीताके वियोगमें दुःखी मेरे प्राण अब निकलना चाहते हैं। मेरा मरण अब निश्चित है। जल्दीसे चिता तैयार करो।" वे 'सीता! सीता!' पुकारते हुए कभी इधर दौडते है, कभी उधर। रामचन्द्र इस उन्मत्त अवस्थामें वृक्षोंको अपनी प्रिय स्त्री समझने लगते हैं। बेलों और लताओंको छातीसे लगा लेते है। पत्थरोको भी सीता समझकर चूमने लगते हैं। कभी दौड़कर तिनकोंको अपने हृदयसे लगा लेते हैं और तृणोंको ही सीता समझ लेते हैं। कभी लक्ष्मणसे कहने लगते हैं कि 'तू ही मेरी सीता है।' श्रीरामचन्द्रजी अपने भ्रममें प्रत्येक वस्तुमें सीताके ही दर्शन करते हैं:—

सीतावियोगें विरह जाण। माझा निघों पाहे प्राण।
सौमित्रा वेगीं रची सरण, अलोट मरण मज आलें।। २०।।
ऐसें बोलतां बोलत, सवेंचि धांवें म्हणे सीता।
वृक्षासी म्हणे माझी कांता, गुल्मलता आलिंगी ।। २१।।
सीता म्हणोनियां जाण, श्रीराम चुबी पाषाण।
धांवोनि हृदयीं धरी तृण, सीता सम्पूर्ण हे माझी।। २२।।
लक्ष्मणासी म्हणे तूं सीता, तूंचि माझी निज कांता।
ऐसी सीतेची अवस्था, श्रीरघुनाथा निजभ्रांती ।। २३।।

(अरण्यकाण्ड अ० १९)

१०१ और १०४ ओवियोंको पढकर उत्तर राम-चरित-मानसमें "उन्मत्त राघव" का वर्णन हमारे सामने आ खड़ा होता है:—

"रे वृक्षाः पर्वतस्थाः गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना।
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः।।
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकांची।
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान् केन दृष्टा।।

वियोग-शृंगारका कितना उत्कृष्ट वर्णन है! कितनी हृदयबेधक शैली है! दुःखका कैसा आवेग है कि मानव उन्मत्त हो जाता है! अपने

प्रियके वियोगमें जो मानसिक दशा होती है उसका कैसा मनोवैज्ञानिक चित्रण है कि चेतन-अचेतनके बन्धन टूट जाते हैं! वियोगी जड़ चेतन सर्वत्र अपनी प्रेयसीके दर्शन करता है।

ईर्ष्या

रामके विवाहके पश्चात् अयोध्यामें घर-घर मङ्गलाचार होने लगे। कुछ समय आनन्दोत्साहमे व्यतीत होनेपर राजा दशरथके मनमें यह विचार उत्पन्न होता है कि रामका राज्याभिषेक किया जाय। राज्याभिषेककी तैयारियाँ, शहरकी शोभा और नगरवासियोको आह्लादित देखकर मथरा घबराई हुई कैकेईके महलमें जाती है और उसकी कठोर शब्दोद्वारा निर्भत्सना करती है। मंथरा कैकेईसे कहती है :—

"ऐ मूर्ख! दुःखको सुख मानकर तू क्यों सो रही है! रामचन्द्रके राज्याभिषेकके आनन्दोत्सवकी तैयारी देखकर तू अत्यन्त हर्षित है; परन्तु तू नहीं जानती कि इससे तुम्हारा महा अकल्याण होनेवाला है। तू इस गर्वमें भूली हुई है कि मै राजाकी परम प्रिय रानी हूँ; परन्तु यह नही जानती कि कौशल्या राजाकी प्रेमपात्र बन गई है। तू तो समझती यह है कि राजा अपना है; परन्तु वह तुझसे कपट कर रहा है और तू इस छलको पहचान न सकी। जिस राज्य-वैभवका तुझे गर्व है उसे राजा दशरथ श्रीरामचन्द्रजीको दे रहे है। अब वैभव कौशल्याके पास चला गया है और तू इससे अनभिज्ञ है।"

ऊठ मूर्खे काय निजशी। सुख मानिशी तें दुःख॥
रामराज्याचें मानिसी सुख। गुढ्या तोरणे अति हरिख॥
तेंचि तुज होय महा दुःख। परि तू मूर्ख नेणसी॥
मी रायाची पढियंति। या गर्वे तुज पडिली भ्रान्ती॥
सौभाग्य गेलें कौसल्येप्रति। तें तूं निश्चिती नेणसी॥
राजा दशरथ आपण। तुज छळितो संपूर्ण॥
याचें तूं नेणसी लक्षण। पढियंति पूर्ण अति गर्वीं॥
तूं गर्वित जें राज्यवैभवेंसी। तें राज्य राजा देतो श्रीरामासीं॥
वैभव गेलें कौसल्येपासीं। तूं नेणसी मूर्खत्वे॥

तुलसीदासने भी मथराके मुखसे इसी भावके शब्द कहलाए हैं। "कौशल्याको विधाता खूब दाहिना हुआ कि यह उत्सव देखकर हृदयमें घमंड नही समाता। तुम स्वय जाकर नगरकी सब शोभा क्यों नही देखती हो, जिसे देखकर मेरे मनमें दुःख होता है! तुम्हारा पुत्र परदेशमे है। तुमको कुछ भी फिक्र नही। जानती हो कि राजा हमारे वशमें है। तुम्हें तकिए-सहित सेजपर नीद ही बहुत प्यारी लगती है। राजाके कपट और चतुराईको नही जानती हो। तुमको सुहागके बलसे सोच नही है। तुम राजाको अपने वश जानती हो। सो राजा मुँहके मीठे और मनके मैले हैं और तुम्हारा स्वभाव सीधा है। कौशल्या यह जानती है कि सब सौते तो मेरी अच्छी भाँति सेवा करती है; परन्तु भरतकी माता पतिके बलसे घमंडमें है। हे माई! कौशल्याको तुम काँटेकी तरह खटकती हो; परन्तु कौशल्या बड़ी चतुर है। उसका छल दिखाई नहीं पडता।"

भा कौशल्यहि विधि अति दाहिन। देखत गर्व रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाय पुर शोभा। जो अवलोक मोर मन क्षोभा॥
पूत विदेश न सोच तुम्हारे। जानतु हो वश नाह तुम्हारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥
तुम्हहिं न सोच सुहाग-वश, निजवश जानहु राव।
मन मलीन मुँह मीठ नृप, राउर सरल स्वभाव॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गवित भरत मातु बल पीके॥
शाल तुम्हार कौशलहिं माई। चतुर कपट नहिं परत लखाई॥

एकनाथने नगरके उत्साहको बतलानेके लिए "गुढ्या तोरणें" का प्रयोग किया है; तो तुलसीदासने "पुरशोभा" द्वारा इसकी अभिव्यजना की है। एकनाथने जिस भावको "राजा आपण व मी रायाची पढियंति।" द्वारा अभिव्यक्त किया है उसे तुलसीदासने "जानतु हो वश नाह तुम्हारे।" व "तुम्हहिं न सोच सुहाग बल।" द्वारा व्यक्त किया है। "तुज छळितो संपूर्ण।" की व्यंजना "लखहु न भूप कपट चतुराई।" व "मन मलीन मुँह मीठ नृप।" द्वारा की गई है।

स्त्रीहठ

रतिभोगकी इच्छासे राजा दशरथ कैकेईके महलमें जाते है। तो क्या देखते है कि वह पृथ्वीपर लोट रही है! शरीरके सब आभूषण फेंक दिए है। वस्त्रोंको फाड़कर लत्ता कर दिया है। बाल बिखेर लिए हैं। आँखें रोते-रोते सूज गई है। कैकेईको इस कुअवस्थामें देखकर दशरथ उसको समझानेके लिए आगे बढ़ते है और कहते है :—

हे रानी! आज तू रूठी क्यों है? तू जिसे चाहे उसे मैं सुसंपन्न कर दूँ। उसे हाथी, घोड़े इत्यादि संपत्तिसे मालामाल कर दूँ। तू जिसको चाहे उसें मै बंधनसे छुड़ा दूँ। मेरे जीते जी तूने मङ्गलसूत्र क्यों तोड़ डाला है और शवके समान धरतीपर लेटी हुई है? तूने इस अशुभ वेषको क्यो धारण किया है?

ज्यासी म्हणसी करा समर्थ। गजान्त लक्ष्मी देईन तेथें॥
करा म्हणसी बंधनिर्मुक्त। त्या निर्मुक्त करीन मी॥
मी असतां शिरावरी। त्वां कां तोडिला गळसरी।
भूमिशयन प्रेताच्यापरी। अशुभकारी हें चिन्ह।

इसी भावको तुलसीदास दशरथके मुँहसे यों कहलवाते हैं:— "कहो किसी कङ्गालको राजा कर दूँ? कहो, किस राजाको देशसे निकाल दूँ? तेरे वैरी देवताको मार सकता हूँ, बिचारे स्त्री-पुरुष तो कीड़े है! जो मनमें भावे उसी बातको हँसकर माँग, और मनको हरनेवाले शरीरमें गहने सजा। हे प्यारी! समय-कुसमयको तो मनमें समझ! देख, बुरे वेषको जल्दी त्याग दे।"

कहु केहि रङ्कहि करौं नरेशू। कहु केहि नृपहि निकारौं देशू॥
सकौं तोर अरि अमरहु मारी। कहा कीट बपुरे नरनारी॥
बिहँसि माँगु मन भावति बाता। भूषण साज मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। वेगि प्रिया परिहरहु कुवेखू॥

यदि एकनाथने "गजान्त लक्ष्मी" का प्रयोग किया है तो तुलसीदासने "रङ्ककहि करौ नरेशू।" एकनाथके दशरथने बधनसे निर्मुक्त करनेका आश्वासन कैकेईको दिलाया है; तो तुलसीदासके दशरथने इस बातका विश्वास दिलाया है कि जिस राजाको तू चाहे मै देशके बाहर निकाल दूँ। "का तोडिला गळसरी।"के स्थानपर तुलसीदासने "भूषण साज मनोहर गाता।" का प्रयोग किया है और "अशुभकारी हें चिन्ह।" के स्थानपर "परिहरहु कुवेखू।" का प्रयोग किया है।

कामलोलुपता

कैकेईके प्रेमपाशमे बँधे हुए राजा दशरथकी क्या दुर्दशा होती है!

राजा दशरथने कैकेईको मनानेके लिए ज्योही उसका हाथ पकड़ा कि कैकेईने उसे झकझोर और झटककर हाथ छुडा लिया। दशरथ कैकेईके मुखको देखना चाहते थे; परन्तु वह अपना मुख दिखानेके लिए तैयार न थी। "हे प्रिये! तू अपना मुख मुझे नही देखने देती।" यह कहकर राजा रोकर कैकेईके चरणोमें जा गिरे और कहने लगे कि तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है! कैकेईने क्रोधावेशमे राजा दशरथको लात मारी और कहा —"निर्लज्ज! उठ यहाँसे। वापस जा। तू अपना मुँह मुझे क्यो दिखाता है? अरे मूर्ख! दो स्त्रियोका स्वामी! नही तू तो बड़ा पापी है! तीन स्त्रियोंका पति है! राजपाट कौशल्याको देकर तूने मेरा स्पष्ट अपमान किया है।

तिशीं लावूं जातां हाता। तिणें झिंझाडिलें नृपनाथा॥
तिचें मुख पाहूं जातां। मुख सर्वथा दावीना॥
प्रिया पाहों नेदी वदन। म्हणोनि रायासी आलें रुदन॥
धांवोनि धरिले तिचे चरण। प्रिये तुजविण मी परदेशी॥
येरी आसुंडिले पाय। ऊठ येथोनि परता जाय॥
मुख दाखवितोसी काय। निर्लज्ज पाहें तू एक॥
दोघा स्त्रियांचा पती तो शठ। तूं तिघींचा अति पापिष्ठ॥
माझा अपमान करोनी स्पष्ट। राज्यपट कौसल्येसी॥

तुलसीदासने इस अवसरपर कैकेईको क्रोधित नागिनकी उपमा दी है। सर्पके दो जिव्हाएँ होती है; तो कैकेईकी दो इच्छाएँ सर्पकी जिव्हाओके समान थी। एक इच्छा थी रामको वनवास और दूसरी थी भरतका राज्याभिषेक। सर्पके दो विषैले दाँत होते है। राजा दशरथ-द्वारा कैकेईको दिए हुए दो वरदान सर्पके जहरीले दाँतोंके समान है।

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पाणि पतिहि निवराई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई॥
द्वउ वासना रसना दसन वर मर्म ठाहुर देखई॥
तुलसी नृपति भवितव्यता–वश काम कौतुक लेखई॥

एकनाथके "तिशी लावू जाता हाता। तिणे भिऊाडिले नृपनाथा" और तुलसीके "केहि हेतु रानि रिसानि, परसत पाणि पतिहि निवराई"में कितना साम्य है! कविने इस सवाद-द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि कामपीड़ित मनुष्य कितना निर्लज्ज व निरपमान होता है! बहु-पत्नी दोषका भी इससे पोषण होता है। सौतिया-डाह क्या नही कर सकता?

रामको वनवास देनेके लिए असमजसमें पड़े हुए राजा दशरथको देखकर कैकेई कहती है :—

"तू सूर्यवशमें कापुरुष पैदा हुआ है। रामको वनवासके लिए नही भेजता है और इससे बचनेके लिए स्त्रियोंके पैरों पड़कर अपना गौरव खोता है। तेरे-जैसा निष्प्रेमी संसारमे दूसरा नही। तूने इस दीनताको दिखाकर सूर्यवंशको लज्जित किया है। हे राजेन्द्र! तुम बड़े कृपण विदित होते हो। तुम वचन देकर अब उसे ठुकरा रहे हो। तुम चाहो कि पाँव पड़नेसे मै अपने वरदानोंको न मागूँ। ऐसा नही हो सकता है। तुम बडे हठी हो। हृदयसे वरदान देना नही चाहते। यदि तुम मुझे यह कहकर वरदान न दोगे कि 'तू मेरे इस मंगल कार्यमें विघ्न मत कर', तो मै अपने प्राण दे दूँगी, जिससे तुम्हारे चित्तको पूर्ण सुख और शान्ति प्राप्त हो।"

नपुंसक तूं सूर्यवंशीं। रामा न धाडावें वनवासासी॥
शेखी स्त्रियांच्या पायां लागसी निःसंग होसी तूं एक॥

अति दीनहीन तूं होसी । लाज लाविली सूर्यवंशासी ।।
बोलिला बोल पैं सांडिसी । कृपण होसी नृपनाथा ।।
पायां पडलियासाठीं । मी न सोडीं वरद गोष्टी ।।
देणें नाहीं तुझे पोटीं । महाहट्टी होसी राया ।।
तूं तव न देसी वरदान । मज म्हणसी महाविघ्न ।।
तरि मी आपला देईन प्राण । सुख सम्पूर्ण हो तुम्हां ।।

स्वभाववर्णनकी कैसी सुन्दर शैली है ! सिर-चढी स्त्रियाँ पूज्य पतिकी कितनी परवाह करती है और स्त्रैण पुरुष स्त्रियोके सामने कैसा बिल्ली बन जाता है, इसका कैसा सुन्दर उदाहरण है !

तुलसीदासकी कैकेयी राजा दशरथके घावपर यो नमक छिड़कती है :—

"हे राजा ! तुम दो विपरीत वस्तुओको एकसाथ साधना चाहते हो । यह उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार एकही साथ खिल-खिलाकर हँसना और गाल फुलाना । तुम दानी कहलाकर कृपणता करना चाहते हो । इस प्रकार तुम क्षेम व कुशल नही रह सकते । अब या तो वचन छोड दो या धैर्य धारण करो । रामके वियोगमें स्त्रीकी भाँति दुःख करनेसे क्या लाभ है ! सत्य संकल्पके लिए शरीर, स्त्री, पुत्र, धन, धाम और पृथ्वी सब तृणके समान है ।"

दुइ कि होइ यक सङ्ग भुवालू । हंसब ठठाइ फुलाउब गालू ।।
दानि कहाउब अरु कृपणाई । होहि कि क्षेम-कुशल रौताई ।।
छांडहु वचन कि धीरज धरहू । जन अवला इव करुणा करहू ।।
तन, तिय तनय धाम धन धरणी । सत्य-सन्ध कहं तृणसम बरणी ।।

कारुण्य

रामको वनवास देनेसे जो वियोग-दुःख होगा उसकी कल्पना राजाके मनमें आती है। वह गद्‌गद् कण्ठसे हाथ जोड़कर रानीकी विनती करता है :—

"कमलनयन श्रीरामचन्द्र सुन्दर, सुकुमार और सुषमाके घर हैं । वनमें पैदल जाना वह कैसे सहन कर सकेंगे ? श्रीराम जो सुवासित वस्त्रोंको धारण

करते हैं वल्कल-वस्त्र कैसे धारण करेंगे ? बनकी उग्र गर्मी व सर्दीको वे कैसे सहन करेगे ? श्रीराम जिनका शरीर इतना कोमल है कि पर्यंकपर बिछे हुए फूल भी छिदते हैं । हाय ! वे तिनकों और पत्तोंपर सोयेंगे ! अति स्वादिष्ट पञ्चामृत पीते जिनका मन कुण्ठित होता है वह खट्टे, चरपरे व कडुवे फल व कन्दमूल कैसे खायेंगे ? "

सुन्दर सुकुमार सुखैकधन । श्रीराम हा राजीवनयन ।।
त्यासी चरण-चाली गमन । दुर्धर वन केंवि कण्ठे ।।
सुवास-वासें श्रीरघुवीर । त्यासि परिधान वल्कलाम्बर ।।
शीत उष्ण अति दुर्धर । श्रीरामचन्द्र केंवि साहे ।
मृदु अरुवार सुखसेजेसी । सुमनें खुपती श्रीरामासी ।।
तृण-पर्ण-शयन त्यासी । कैसेनि सोसि श्रीराम ।
पंचामृत अति चोखटें । सेवितां श्रीरामाचें मन विटे ।
त्यासी तिखट अंबट तुरटें । फळें-मुळें कडवटें केंवि खाये ।।

तुलसीदासने इसी प्रसगका वर्णन यो किया ह :—

" नाना प्रकारके दूधफेनके समान स्वच्छ और कोमल गद्दोंपर रामचन्द्रजी और सीता शयन करते है । जिनकी सुन्दरताको देखकर कामदेव और रति लज्जित होते है वे सीता-राम थके हुए बिनावस्त्र साथरीमें सो रहे है । इनको इस अवस्थामें देखा नही जाता । जिनकी माता-पिता, कुटुम्बी, नगर-निवासी, सखा, सुशील, दास और दासी प्राणकी तरह रक्षा करते है वे ही राम आज पृथ्वीपर सो रहे है ! जिनके पिता जनकका ससारमे यश फैल रहा है, जिनके ससुर दशरथ इन्द्रके सखा है, जिनके पति रामचन्द्रजी है वे सीता पृथ्वीपर सो रही है ! ब्रह्मा किसका वाम नही हुआ ! क्या सीता-राम वनके योग्य है ? ससारमें कर्म प्रधान है, यह सत्य ही है । "

विविध वसन उपधान तुराई । क्षीर फेनुमृदु विशद सुहाई ।।
तहँ सिय राम शयन निशि करहीं । निज छबिरति मनोज पद हरहीं ।।
ते सिय राम साथरी सोये । श्रमित वसन बिनु जाहिं न जोहे ।।
मातु पिता परिजन पुरवासी । सखा सुशील दास अरु दासी ।।

जुगवहिं जिनहिं प्राणकी नाईं । महि सोवत सोई राम गुसाईं ।।
पिता जनक जगविदित प्रभाऊ । ससुर सुरेश सखा रघुराऊ ।।
रामचन्द्र पति सो वैदही । महि सोवत विधिवामन केही ।।
सिय रघुवीर कि कानन योगू । कर्म प्रधान सत्य कह लोगू ।।

नाथने जिस भावको "मृदु अरुवार सुखसेजेसी। सुमनें खुपती श्री रामासी। तृण-पर्ण-शयन त्यासी" से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने "विविध वसन उपधान तुराई। क्षीर फेनु मृदु विशद सुहाई ।। ते सिय राम साथरी सोये।" से प्रकट किया है।

राजा दशरथ कैकेईको समझानेका फिर प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं :—

"कैकेई! सत्य समझ कि श्रीरामके वन जानेपर लक्ष्मण उनके साथ जायेंगे और उनके साथ मेरा प्राण जायगा। इस दुःखमें कौशल्या प्राण दे देगी और सुमित्रा भी जीती न रहेगी। इतनोके प्राण जानेपर तू सतुष्ट होगी! इतना विलाप न कर। मै भरतको राज्यसिहासनपर बिठा दूँगा, परन्तु रामको वनवास देनेका अनर्थ मत कर। मैं तेरी शरण हूँ!" यह कहकर राजा दशरथने कैकेईके चरणोंपर माथा रख दिया और कहने लगे कि "इस दशरथको क्षमा करो! केवल यह वरदान न माँग कि रघुनाथजी वनको जायँ।" कैकेईके चरणोंको अपने सिरपर रखकर वे जमीनपर लोट गए। यह देखकर कैकेई अत्यन्त रोषमें आकर कहने लगी।

"ऐ शठ! यह नष्टता क्या करते हो?"

श्रीरामाचें वन-प्रयाण । त्या सांगातें जाईल लक्ष्मण ।।
त्यासवें जाईल माझा प्राण । सत्य जाण कैकेई ।।
दुःखें कौसल्या त्यजील प्राण । सुमित्रा मरेल सत्य जाण ।।
येव्हढियांचा गेलिया प्राण । सुखसम्पन्न तूं होसी ।।
दुर्धर करोनियां आकान्त । राज्यीं स्थापूं पाहसी भरत ।।
येवढा न करी तूं अनर्थ । शरणागत मी तुझा ।।
म्हणोनि चरणीं ठेविला माथा । क्षमा करो मज दशरथा ।।
न मागावी हे वरद कथा । वना रघुनाथा न दवडावें ।।

म्हणोनि घातलें लोटांगण । धरिलें मस्तकीं तिचे चरण ॥
तंव ते क्षोभली दारुण । म्हणे शठ नष्टपण कां करिसी ॥

तुलसीदासने इस आशयको यो वर्णन किया है :—

"क्या सीता रामका साथ छोड़ेगी ? क्या लक्ष्मण घरपर रहेंगे ? क्या भरत नगरमें राज करेंगे ? क्या राजा दशरथ बिना रामके जीवित रह सकेंगे ? अर्थात् श्रीरामके वन जाते ही सीता और लक्ष्मण उनके साथ जायँगे ! भरत नगरका राज न करेंगे और राजा दशरथ अपने प्राण तज देंगे !" फिर राजा दशरथ कहते है कि "भरतको अवश्य युवराज बनाओ; परन्तु श्रीरामको वन भेजनेका क्या प्रयोजन है ? श्रीरामके समान पुत्र क्या बनके योग्य है ? यह सुनकर तुम्हे लोग क्या कहेंगे ? हे कैकेई ! यह अच्छी तरह समझ लो कि श्रीरामके बिना अयोध्या उसी प्रकार श्रीहीन हो जायगी जिस प्रकार बिना सूर्यके दिन, बिना प्राणके शरीर और बिना चन्द्रमाके रात्रि ।"

सीय कि पिय संग परिहरहिं । लषन कि रहिहहिं धाम ॥
भरत कि भूजब राजपुर । नृप कि जियहिं बिन राम ॥
भरतहि अवशि देहु युवराजू । कानन कौन रामकर काजू ॥
राम सरिस सुत कानन योगू । कहा कहहिं सुनि तुम कहँ लोगू ॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्राण बिनु । तनु चन्द बिनु जिमि यामिनी ॥
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु । समुझु भौं मनभामिनी ॥

जिस भावको एकनाथने "त्या सांगातें जाईल लक्ष्मण । त्यासवें जाईल माझा प्राण ।" से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने "लषन कि रहिहहि धाम । नृप कि जियहिं बिन राम ॥" से प्रकट किया है । फिर एकनाथने जिस भावको "राज्यी स्थापूं पाहसी भरत । न मागावी हे वरद कथा ॥ वना रघुनाथा न दवडावें ॥ " से स्पष्ट किया है उसे तुलसीदासने "भरतहि अवशि देहु युवराजू । कानन कौन राम कर काजू ॥" से व्यक्त किया है ।

जब कैकेई किसी प्रकार नही मानती तो राजाकी आज्ञा पाकर सुमत रामको लाकर दशरथके सामने खड़ा कर देता है। सुमंत और रामको सामने खड़ा देखकर दशरथका हृदय व्यथित हो उठा। यह विचार आते ही कि 'मै रामको वनवास जानेकी आज्ञा दूँगा', राजा दशरथ शोकाकुल होकर मूर्च्छित हो गए। रामने दशरथको सात्वना दिलाई। उस समय कैकेईकी कठोरता, दशरथकी विह्वलता और रामकी शातताका जो वर्णन कविने किया है उसे पढ़कर रसिक पाठक रोये बिना नही रहते।

पतिप्रेम

अब राम वनवासके लिए निकलनेवाले है। सीतासे मिलनेके लिए उसके मन्दिरमे जाते है। रामका यह निश्चय देखकर सीताका हृदय विदीर्ण हो गया! शरीर काँपने लगा, नेत्रोमे आँसू भर आए। हृदय धड़कने लगा और स्वेदबिन्दु मोतीके समान उसके मुखपर चमकने लगे। "रामको राजगद्दी मिलनेवाली थी और मिला वनवास! अब रामके बिना मुझे इस सुख-सम्पत्तिसे क्या प्रयोजन?" ऐसा विचार मनमे आते ही सीता कहने लगी कि "मै आपके सुख-दुःखकी सगिनी हूँ; इसलिए मै भी आपके साथ चलूँगी।" ऐसा आग्रह करके सीताने रामके पैर पकड़ लिए और पृथ्वीपर लोट गई। रामने सीताको उठा पेटसे लगाकर बहुत समझाया। वनके व्याघ्र, सिह इत्यादि हिसक पशुओका भय दिखाया। सर्दी, गर्मी और वनके कटकाकीर्ण मार्गका हाल बताया। वृक्षोके नीचे सोने—भूखे-प्यासे रहने—का डर बताया। यह भी कहा कि "तुम-जैसी सुकुमार और सुन्दर स्त्रियाँ वनके योग्य नही है।" परन्तु सीताने उन सबकी परवाह न की और वह व्याकुल होकर कहने लगी :—

"हे रघुकुल-तिलक! आपके साथ रहनेसे कटकाकीर्ण मार्ग मेरे लिए निष्कण्टक होगा। विष अमृततुल्य होगा। आपके साथ बनमें रहनेसे मुझे परम सुख होगा। मै उसे वैकुण्ठ और कैलासके समान समझूँगी। आपके बिना संसार मेरे लिए दुःखका भार है।"

जवळी असतां रघुटिळक। कंटक होती निष्कंटक।
विष तें होय पीयूष। परम सुख वनवासीं॥

तुज सांगातें वनवास । तो मज वैकुंठ कैलास
तुजवेगळा संसार वोस। दुःख असे समज तेव्हां

तुलसीदासने इस अवसरपर सीतासे ये शब्द कहलवाये हैं:—

"हे स्वामी ! आपके साथ पर्णकुटीमें वनका वास मेरे लिए वैकुण्ठके समान होगा। वन, नगरके तुल्य होगा। पक्षी और मृग कुटुम्बियोंके सदृश और वल्कल वस्त्र रेशमी वस्त्रके समान होगे। हे प्राणनाथ ! आपके बिना वैकुण्ठ भी नरकके समान होगा।"

खग मृग परिजन नगर वन, वलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन-सम, पर्ण-साल सुख-मूल ॥
प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम बिनु रघुकुल-कुमुद-विधु, सुरपुर नरकसमान ॥

जिस भावको एकनाथने "तुज सांगातें वनवास। तो मज वैकुण्ठ कैलास।" से व्यक्त किया है। उसे तुलसीदासने "नाथ साथ सुख सदन-सम, पर्णसाल सुखमूल।" द्वारा स्पष्ट किया है।

इसके उपरान्त सीता कहती है कि "स्त्रीका जीवन-धन पति है। वह स्त्रीका भूषण है। उसके बिना स्त्री अति दुःखी रहती है। पति स्त्रीका दूसरा स्वरूप ही है। वह स्त्रीकी परम शान्ति है। पतिके बिना स्त्रीकी दुर्दशा होती है। पति स्त्रीकी शोभा और प्रेमका धनी होता है। बिना पतिके स्त्री अत्यन्त दुःखी हो जाती है। आप तो मेरे प्राणनाथ हैं। आपके बिना मै जीवित नही रह सकती। मेरे परमात्मा रामचन्द्र है, जो मेरे हृदयमें निवास करते है। जब आप बनको प्रयाण करेंगे तो मेरे प्राण भी आपके साथ जाएंगे। यदि आप मुझे यहाँ छोड़ देंगे तो मै निश्चय ही जीवित न रहूँगी।" ऐसा कहकर सीताने रामके दोनों चरण पकड़ लिए और उसकी आँखोंसे प्रेमके आँसू टपकने लगे जिनसे श्रीरामके पैर धुल गए। इससे रामचन्द्रजी संतुष्ट हुए।

पति प्रियेचें निज जीवन । पति प्रियेचें निज निधान ॥
पति प्रियेचें निज भूषण । तेणेंवीण ते अति दीन ॥

पति प्रियेची निज मूर्ती । पति प्रियेची निज आत्मगती ।।
पति प्रियेची परम शांती । होय उपपत्ती त्यावोण ।।
पति प्रियेचें निज शोभन । पति प्रियेचें गतो गमन ।।
पति प्रियेचें प्रेमधन । तेणेंवीण ते अति दीन ।।
तूं तंव माझा प्राणनाथ । तुजवेगळा मज प्राणान्त ।।
माझा परमात्मा रघुनाथ । हृदयस्थ अवधारी ।।
जेव्हांवि तुझें वन-प्रयाण । तुजसवें येती माझे प्राण ।।
मागें राहवितां जाण । अचुक मरण मज रामा ।।
म्हणोनि धरिले दोन्ही चरण । गहिंवरें गळताती नयन ।।
जालें पति-पाद-प्रक्षालन । श्रीराम पूर्ण तुष्टला ।।

तुलसीदासने इसी भावको यों दिखाया है कि 'पतिके बिना सब—स्नेह, शरीर, राजवैभव इत्यादि—शोकके समान है। यह विरहाग्नि सूर्यसे भी अधिक तप्त करती है। संसारके भोग पतिविहीन स्त्रीको रोगीकी भाँति अरुचिकर प्रतीत होते हैं और आभूषण भार मालूम होते हैं। संसार नरकके समान है जहाँ पापियोंको तरह-तरहके दण्ड दिए जाते हैं। बिना पतिके स्त्रीकी गति वैसी ही है जैसे कि बिना जलवाली नदीकी और प्राणहीन शरीरकी।' सीता कहती है कि शरद "ऋतुके पूर्ण चन्द्रसमान आपके मुखको देखकर मुझे वनमें भी तुम्हारे साथ रहनेमें सब सुख होगा।"

जहँ लगि नाथ नेह अरू नाते । पिय बिनु तियहि तरणिते ताते ।।
तनु धन धाम धरणि पुर राजू । पतिविहीन सब शोक समाजू ।।
भोग रोगसम भूषण भारू । यम-यातना-सरिस संसारू ।।
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं । मो कहं सुखद कतहुँ कीउ नाहीं ।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिंह नाथ पुरुष बिनु नारी ।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । शरद विमल-बिधु-बदन निहारे ।।

एकनाथ और तुलसीदासने पतिप्रेमका कैसा सुन्दर चित्रण किया है! एकनाथने जिस भावको "मागें राहवितां जाण। अचुक मरण मज

रामा।" से प्रकट किया है उसे तुलसीदासने "राखिय अवध जो अवधि लग रहत जानिए प्राण।" से दर्शित किया है। यह है सच्चा पतिव्रत प्रेम। पतिके जीवनपर स्त्रीका सम्पूर्ण सौभाग्य अवलबित है, जिसकी सेवाही स्त्रीका एकमात्र कर्तव्य है। पति ही जिसके लिए तीर्थयात्रा व मोक्ष-साधन है, ऐसे ईश्वरतुल्य पतिके प्रति साध्वी व सदाचरणी स्त्रीकी सदा पूज्यबुद्धि होती है। यह तथ्य सीताके उपरोक्त उद्‌गारोसे कविने अच्छी तरह प्रगट किया है।

शोक व करुणा

जब सुमन्त रथ लेकर वापस आया तो रथमें रामको न देखकर सब अयोध्यामे कोलाहल मच गया। राजमहल शोकसागरमे डूब गया। पुत्रविरहमें राजा दशरथकी शोकाग्नि प्रज्वलित हो गई। राजा दशरथ बार-बार मूर्च्छित हो जाते है। रनिवासमें कौशल्या और सुमित्रा सिरको पीटती और रोती-चिल्लाती है। सारे नगरमें घर-घर रोना-पीटना चालू है। हर जगह उदासी छा गई है। जहाँ देखो हाहाकार मचा हुआ है। एकनाथने इसका वर्णन यो किया है :—

"अयोध्यापुरीके नर-नारी सुमतके वापिस आनेपर दुःखी है। वे कहते है—'यह सुमत नही, कुमन्त है! यह काले मुखवाला रामचन्द्रजीको वनमे छोड़कर यहाँ आया है। इसका मुँह जल जाय। नगरको दुःख देनेके लिए आया है!' सब लोग सुमन्तकी निन्दा कर रहे है; परन्तु वह बिचारा गर्दन नीचे डाले खडा है। वह मन-ही-मन सोचता है कि मै भाग्यहीन रामके पाससे क्यो वापिस आया? दुःखसे वह अपने मस्तकको पीटता है और अपनेको निर्लज्ज समझकर धिक्कारता है!"

नर-नारी आक्रंदत। सुमंत नव्हे हा कुमंत।
वना सांडोनि रघुनाथ। आला येथें काळ-तोंडा॥
जळो याचें काळ मुख। आला नगरा द्यावया दुःख।
निन्दितो सकळ लोक सन्मुख। अधोमुख सुमंतु॥
रामापासून उफराटा। मी कां आलों करंटा।
दुःखें पिटितु लल्लाटा। धिक् अदृष्टा निर्लज्जा॥

तुलसीदासने सुमन्तकी दशाका यों वर्णन किया है :—

" दुखमें व्याकुल सुमन्त सोचमें मग्न हैं। 'श्रीरामके बिना मेरा जीवन धिक्कार है ! अन्तमें यह नीच शरीर तो नाशवान है। यदि श्रीरामके वियोगमें मेरा शरीर छूट जाता तो यश प्राप्त तो होता।"

वह हाथ मीजकर ऐसे पछता रहा है मानो किसी कृपणने अपना धन खो दिया है। नेत्रोंमें आँसू भरे है जिनके कारण दृष्टि भी कम हो गई है। कानोंसे सुनाई नही देता और व्याकुलताके कारण बुद्धिभ्रम हो गया है। ओठ सूख गए हैं। मुँह लटक गया है। श्रीरामके आनेकी अवधिरूपी किवाड़ने प्राणोको शरीरसे बाहर नही जाने दिया। सुमन्तकी ऐसी दशा है मानो उसने अपने माता-पिताका वध किया है।"

सोच सुमन्त विकल दुःख दीना। धिक् जीवन रघुवीर-विहीना॥
रहहि न अन्तहु अधम शरीरू। यश न लहेउ विछुरत रघुवीरू॥
मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहु कृपण धनराशि गँवाई॥
लोचन सजल दृष्टि भइ थोरी। सुनै न श्रवण विकल मति भोरी॥
सूखो अधर लागि मुँह लाटी। जिय न जाय उर अवधि कपाटी॥
विवरण भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुं पिता महतारी॥

एकनाथने जिस भावको " रामापासून उफराटा। मी कां आलों करण्टा।"से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने " सोच सुमन्त विकल दुःख दीना। धिक् जीवन रघुवीर-विहीना।"से प्रकट किया है।

प्रजाको इस तरह दुःखी जान और सुमन्तके इस दुःखद समाचारको सुनकर राजा दशरथ अपना वक्षःस्थल पीटकर कहते है :—

" लक्ष्मणसे बढ़कर कोई ससारमें धन्य नही जो राजसुख, प्रिय पत्नी और मातापिताको छोड़कर रघुनाथजीके साथ वनको गया है। धन्य है सती सीता, धन्य है लक्ष्मण-जैसा भाई और धन्य है श्री रघुनाथ-जीका जन्म जिन्होंने पिताकी आज्ञाका पालन किया।"

सांडोनि राजभोग निज कांता। सांडोनिया मातापिता॥
वन सेऊ गेला संगें रघुनाथा। त्या लक्ष्मणापरता धन्य नाहीं॥

धन्य ते सती सीता । धन्य तो लक्ष्मण भ्राता ॥
धन्य जन्म श्रीरघुनाथा । पितृवचना प्रतिपाळीं ॥

तुलसीदासने इसी भावके शब्दोंको कौशल्याके मुखसे कहलवाया है :—
"कौशल्या कहती है कि 'श्रीरामचन्द्रको बन जाते सुनकर सीता उनके साथ चल दी। यद्यपि सीताको बहुत समझाया गया परन्तु उसे श्रीरामके चरणोंमें इतना प्रेम था कि वह न रुकी । यह सुनकर लक्ष्मण भी उनके साथ चल दिए । श्रीरामचन्द्रके यत्न करनेपर भी वे रुके नहीं । यह सब मैंने अपनी आँखोंसे देखा । फिर भी मेरे प्राण न निकले । रामके समान पुत्र और मेरी-सी माता ! धिक्कार है मेरे प्रेमको ! ! जीने और मरनेका मुर्म राजा दशरथने अच्छी तरह समझा । मेरा हृदय तो सौ वज्रोंके समान कठोर है ।"

चले विपिन सुनि सिय-संग लागी । रही न रामचरण अनुरागी ॥
सुनतहि लषन चले लगि साथा । रहे न यत्न किए रघुनाथा ॥
यह सब भा इन आँखिन आगें । तउ न तजा तनु जीव अभागे ॥
मोहिं न लाज निज नेह निहारी । राम-सरिस सुत मैं महतारी ॥
जियै मरै भल भूपति जाना । मोर हृदय शत कुलिश-समाना ॥

श्रीराम, सीता और लक्ष्मणका स्मरण कर राजा दशरथ कहते हैं कि 'उनको बनमें अन्न खानेको कहाँ मिला होगा ?' यह सोचकर उनके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहने लगी और राजा बार-बार मूर्च्छित होने लगा । जो दशा मछलीकी वंसीमें फँस जानेके बाद होती है वही हालत दशरथकी थी। जैसे मछली तड़पती है उसी प्रकार दशरथ रामके मोह-फाँसमें तड़प रहा है; न प्राण ही निकलते हैं और न जीवित ही है । "हे सुमन्त ! मैं क्या करूँ ? श्रीरामके दर्शन न मिलनेसे मेरी ऐसी अवस्था हो गई है कि मेरे प्राण निकलनेमें कोई सन्देह नही है । श्रीरामके बन जाते ही उनके साथ-साथ मेरी गति, मति चित्तवृत्ति सब चली गई है । अब मेरे प्राण भी रामके पास जाना चाहते हैं । हे सुमन्त ! सच समझ, रामके रूपमें मेरा मन लगा है । मेरी आँखें उनके रूपमें फँसी हैं और अब प्राण भी उनके साथ जाएंगे !"

त्यासी कोठें मिळालें अन्न । तिहीं कोठें केलें भोजन ।।
अश्रुधारा गळती नयन । मूर्च्छा पुनः पुनः ।।
गळीं अडकला जेंवि मासा । तो जीवें न मरे चरफडी जैसा ।।
दशरथ तैसी दशा । मोह-फांसीं विलपतु ।।
काय करूं रे सुमन्ता । श्रीरामासी न देखतां ।।
जीव जाईल तत्त्वतां । मज अशी अवस्था होतसे ।।
श्रीरामासवें गेली गति । श्रीरामासवें गेली चित्तवृत्ति ।
श्रीरामासवें गेली मति । प्राण रामाप्रति जाऊं पाहे ।।
रामरूपीं जडले नयन । रामरूपीं जडलें मन ।।
रामापाशीं जातील प्राण । सत्य जाण सुमन्ता ।।

तुलसीदासने इस आशयका वर्णन यो किया है :—

"सुमन्तके वचन सुनकर राजा दशरथ हृदयकी वियोग-वेदनाके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े। उनका मन रामके मोहमें ऐसा तडफड़ाता है जैसा कि मांजा खाकर मछली। राजा दशरथके प्राण कण्ठतक आ गए और वे मणिविहीन सर्पकी भाँति व्याकुल हो उठे। उनकी सब इन्द्रियाँ इस प्रकार अत्यन्त व्याकुल हो उठी, जिस प्रकार जलहीन सरोवरमे कमल-बन। धैर्य धारण करके राजा दशरथ उठ बैठे और पूछने लगे—हे सुमन्त ! कृपालु रामचन्द्रजी कहाँ है ? स्नेहपात्र लक्ष्मण व रामचन्द्र कहा है ? मेरी बहू जानकीजी कहाँ है ?"

सुनत सुमन्त वचन नर नाहू । परेऊधरणि उरु दारुण दाहू ।।
तड़फत विषम मोह मन मापा । मांजा मनहु मीन कहँ व्यापा ।।
प्राण कण्ठगत भयउ भुआलू । मणिविहीन जिमि व्याकुल ब्यालू ।।
इन्द्रिय सकल विकल भइ भारी । जनु सर सरसिज-वन बिनुवारी ।।
धरि धीरज उठि बैठु भुआलू । कहु सुमन्त कहँ राम कृपालू ।।
कहँ लक्ष्मण कहँ राम सनेही । कहँ प्रिय-पुत्र-वधू वैदेही ।।

एकनाथ और तुलसीदासने पुत्र-वियोगका कैसा हृदयवेधक वर्णन किया है ! एकनाथने जिस भावको "गळी अडकला जेंवि मासा । तो जीवें न

मरे चरफडी जैसा।। "से व्यक्त किया है उसे तुलसीने "तड़फत विषम मोह मन मापा। माजा मनहु मीन कहँ व्यापा ।।"से स्पष्ट किया है।

श्रीरामके रूप व गुणकी याद करते हुए राजा दशरथको ऐसी मूर्च्छा आई कि फिर होश न आया। 'राम राम' कहते हुए उन्होंने स्वयं अपने प्राण छोड़ दिए। राजा दशरथने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको रामार्पण कर दिया।

श्रीरामाचे रूपगुण। आठवितां मूर्च्छा आली पूर्ण ।।
मूर्च्छेसवें गेला प्राण। रामस्मरण करितचो ।।
'राम राम' करितां स्मरण। स्वयें दशरथें सोडिला प्राण ।।
मन बुद्धि इन्द्रिय हे जाण। रामार्पण तेणें केलीं ।।

तुलसीदासने इस भावका वर्णन यो किया है :—

" रामके वियोगमें दुःखी राजा दशरथ प्रलाप करते है कि 'हे प्राणप्रिय रघुनाथजी! तुम्हारे बिना, जीते बहुत दिन व्यतीत हो गए। हा जानकी! हा लक्ष्मण! हा राम! तुम मेरे चित्तरूपी चातकके लिए मेघोंके समान कल्याण करनेवाले हो।' राजा दशरथने 'राम राम' कहकर श्रीरघुनाथजीके वियोग-दुःखमें अपने प्राण छोड़ दिए और वे वैकुण्ठको सिधारे।"

हा रघुनन्दन प्राण पिरीते। तुम बिन जियत बहुत दिन बीते ।।
हा जानकी! लषन हा! रघुवर। हापितु हित चित चातक जलधर ।।
'राम राम' कहि राम, 'राम राम' कहि राम ।।
तनु परिहरि रघुवर विरह राव गयो सुरधाम ।।

एकनाथके "'राम राम' करिता स्मरण। स्वयें दशरथें सोडिला प्राण।" और तुलसीके " राम राम कहि राम, राम राम कहि राम। तनु परिहरि-रघुवर विरह राव गयो सुरधाम।।" मे कितना सादृश्य है!

शौर्य व बीभत्स

चित्रकूटको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें पधारे जहाँ उन्होंने पञ्चवटीमें आश्रम बनाया। शूर्पनखा इस अरण्यमें आकर श्रीरामसे विवाह

करनेके लिए अपनी इच्छा प्रकट करती है । इसका परिणाम यह होता है कि लक्ष्मण उसके नाक-कान काट लेते हैं । इसका बदला लेनेके लिए वह खर-दूषणको बुलाकर लाती है । राक्षस-सेनाने श्रीरामचन्द्रजीको घेर लिया है । खर रामचन्द्रजीसे कहता है कि 'सीताको मेरे अर्पण कर दो; तो मैं तुमसे युद्ध न करूँगा ।' इसपर श्रीरामचन्द्रजी खर राक्षसको धिक्कार कर क्रोधसे कहते हैं :—

" तुम्हारी शक्ति अब तुम्हारे पाससे चली गई है । तू वृथा गदा चलानेका साहस कर रहा है ! तुझ पापात्मा पापमूर्तिको मैं गदासहित पृथ्वीपर पटक दूँगा । तूने बहुतसे ब्राह्मण खाये हैं । ब्रह्महत्याका विकट दोष होता है । इसका यही प्रायश्चित्त है कि तुम मेरे बाणसे मारे जाओगे । तुम्हारे साथ ये नकटी शूर्पनखा है ! तुम्हें यश कैसे मिल सकता है ! यह निश्चित है कि नकटीने तुम्हें नष्ट कर दिया है और तुम्हें यह दिखाई नही देता है । तुम्हारा नाम ' खर ' है । गधेसदृश तुम्हारा मुँह है । तुम गधेके समान शस्त्रोका बोझ ढोते हो । तुम्हारा कोई कार्य बुद्धिसगत नही । तू बड़ा मूर्ख है ।

तुजपासोनि गेली शक्ति । वृथा बाळगसी गदा-गती ।
गदेसहित पाडीन क्षितीं । तूं पापमूर्ति पापात्मा ॥ १४ ॥
ब्राह्मण भक्षिले बहुत । ब्रह्महत्यांचा दोष अद्‌भुत ।
बाण-धारा प्रायश्चित्त । मी निश्चित तुज देईन ॥ १५ ॥
ते नकटी तुम्हां सांगातें । तुम्हांसी यश कैंचें येथें ।
नकटियें निर्दाळिलें निश्चितें । हे खरातें लक्षेना ॥ १६ ॥
नांवें खर रूपें खर । शस्त्रभार वाहे खर ।
नकळे बुद्धीचा विचार । ऐसा मूर्ख थोर तूं होसी ॥

तुलसीदासने इस स्थलका वर्णन यो किया है :—

मन्त्रीको बुलाकर खर-दूषण बोले कि रामचन्द्रजीसे जाकर कह दो कि वह 'अपनी स्त्रीको हमको देकर दोनों भाई जीते-जागते अपने घरको चले जायँ ।'

जब मन्त्रीने जाकर रामचन्द्रजीसे कहा, तो रामचन्द्रजीने कहा :—

"हम क्षत्रिय हैं और तुम-जैसे दुष्टरूपी मृगोको शिकारके लिए ढूढ़तेही फिरते हैं। यदि हमारा शत्रु बलवान हो तो उसे देखकर डरते नहीं और एक बार तो कालसेभी लड़ जाते है। यद्यपि हम मनुष्य है तो भी राक्षस-कुलके नाशक है और मुनियोंके पालक है। हम ऐसे बालक हैं। यदि तुममें लडनेका बल न हो तो चुपचाप घरको लौट जाओ। हम उस शत्रुको नही मारते जो युद्ध-क्षेत्रमे पीठ दिखाता है।"

हम क्षत्रिय मृगया वनकरहीं। तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं।
रिपु बलवन्त देख नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥
यद्यपि मनुज दनुज-कुल-घातक। मुनि-पालक खल-घातक बालक॥
जो न होइ बल घर फिरि जाहू। समरविमुख मैं हतौं न काहू॥

एकनाथने शकुन व अपशकुनके लौकिक आचरणको भी यहाँ दिखाया है। मार्गमें यदि कोई नकटा मिल जाय तो जनसाधारण इसे अपशकुन समझते है और कार्यसिद्धिमे शंका करने लगते है। कविने प्राचीन परिपाटीके अनुसार ब्रह्महत्याको एक महान् पातक माना है, जिसका प्रायश्चित्त प्राणदण्डही है। 'खर' शब्दका कैसा विनोदी विवेचन किया गया है! इन ओवियोंमें वीररसका एक नमूना भी उपस्थित किया है।

तुलसीदासने भी नाक-कान कटे हुए व्यक्तिके दर्शनको अपशकुन माना है जैसा कि उनकी इस भावकी चौपाईसे प्रकट होता है :—

"वे नाक-कान-रहित अशुभ रूप शूर्पनखाको आगे कर चले। रास्तेमे उन्हें असंख्य भयंकर अपशकुन हुए; पर वे कालके गालमें जा रहे थे इस लिए उन राक्षसोंने अपशकुनकी परवाह नही की।"

शूर्पनखहि आगे करि लीनी। अशुभरूप श्रुति-नासा-हीनी॥
अशकुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु विवश भयझारी॥

श्रीरामचन्द्रके इन वचनोको सुनकर खरने उत्तर दिया :—

"श्रीरामचन्द्रजी! बहुत अट-सट मत बको। वीरोके लिए बड़बड़ाना शोभा नहीं देता। आओ, देखें रणमें किसकी विजय होती है! हे श्रीरघुवीर!

तुमने बहुत-से वीर राक्षस मारे है। बस, अब बहुत हो चुका। अब मै तुम्हारे रक्तसे मरे हुए राक्षसोंका तर्पण करूँगा। क्योंकि तुम्हारे रुधिरके तर्पणसे राक्षणगण तृप्त होंगे। मैने यह सत्य प्रतिज्ञा की है कि गदाके प्रहारसे तुम्हारे प्राण लूँगा। हे श्रीरामचन्द्रजी! सावधान! एकही प्रहारसे तुम्हारा काम पूरा कर दूँगा!" वह गदाको चारो तरफ घुमा रहा था। दाँत किरकिरा रहा था। उसके नेत्रोंसे धुँवा निकल रहा था और वह क्रोधसे थरथर काँप रहा था। वह श्रीरामचन्द्रके कण्ठका रुधिरपान करनेके लिए दौड़कर आगे बढा।

किती जल्पसी संरावंरा। बोलों नको श्रीरामचन्द्रा।
बहु बडबड न साजे वीरा। रणनिर्धारा पाहे पां॥ २२॥
राहे साहे श्रीरघुवीरा। तुंवा मारिल्या बहुत धुरा।
तुझ्या घेवोनियां रुधिरा। मारिल्या धुरा तर्पीन॥ २३॥
तुझिया रुधिराचे तर्पणें। तृप्त होतील राक्षसगण।
मदाघायें घेईन प्राण। सत्य सम्पूर्ण पण माझा॥ २४॥
सावध पाहें श्रीरामचन्द्रा। येकेचि घायें करीन पुरा।
बांत खातसे करकरां। गदा गरगरां भोंवडी॥ २५॥
धूम्र निघे नेत्रद्वारां। रागें कांपतु थरथरां।
डसों धांवे श्रीरामचन्द्रा। कण्ठोच्या रुधिरा प्राशावया॥ २६॥

—अरण्यकाण्ड अ० ११

खरने जो रामचन्द्रजीको उत्तर दिया है उसमें भी श्रीरामसे, 'रामचन्द्रजी' संबोधित किया है। एक राक्षससे अपने शत्रु रामके प्रति 'श्रीराम' से संबोधित करानेमें 'नाथ' एक राक्षस-द्वारा भी इस मर्यादाको उल्लंघन कराना पसंद नही करते हैं। "दाँत खातसे करकरां। धूम्र निघे नेत्र द्वारां। रागें कांपतु थरथरां।' द्वारा" क्रोधके चिह्नोंका कैसा उपयुक्त वर्णन है!

तुलसी-रामायणमें दूत श्रीरामचन्द्रजीके उत्तरको लाते हैं कि शत्रुपर दया करना बडी भीरुता है। यह सुनकर खर-दूषणके हृदयमें बड़ी जलन पैदा हुई।

खर-दूषणने हृदयमें जल-भुनकर कहा :—"हे बिकट राक्षसवीरो ! धनुष-बाण, तोमर, शक्ति, त्रिशूल, तलवार, बर्छी और फरसोको लो तथा दौड़कर दोनों भाइयोंको पकड़ लो।" यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने धनुषकी टंकोर की जिससे बडा भारी शब्द हुआ। उसे सुन राक्षस घबडा गए और बहिरे हो गए और किसीको ज्ञान न रहा।

उर दहेउ कहेउ कि धरहु बिकट भट रजनीचरा।
शर-चाप तोमर शक्ति शूल कृपाण परिघ परशूधरा॥
प्रभुकीन धनु-टंकोर प्रथम कठोर घोर भयो महा।
भये बधिर व्याकुल यातुधान न ज्ञानतेहि अवसर रहा॥

एकनाथने श्रीरामकी युद्ध-कुशलताका वर्णन भी सुन्दर किया है। "श्रीराम कभी तरकससे बाण निकालते हैं। कभी प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं। कभी बाण छोड़ते हैं। जिनसे पीड़ित हो राक्षस रण-क्षेत्रमें चारों ओर भागने लगते हैं। श्रीरामने दूषणके रथको व सारथीको छिन्न कर दिया। अब दूषण क्रोध कर हाथमें गदा ले श्रीरामकी तरफ़ दौड़ा कि उनके अभिमानको प्राण लेकर नष्ट करे। श्रीरामने कहा कि 'तुम्हे लाज नहीं आती कि तुम्हारा नाम 'दूषण' है। दूषण ! तुम खरके भूषण हो। तुम दोनोंके मुख निंदनीय हैं। तुम्हारा न केवल नाम ही दूषण है वरन् धर्म, कर्म सब दुष्ट है। दूषणका बल भी दूषित होता है। तुममें वीर्य कैसा ?' दूषण हाथमें गदा लेकर रामकी ओर इस प्रकार दौडा जैसे कोई पतंगा दीपककी ओर दौड़ता है।"

केव्हां भात्याचा बाण काढी। केव्हां जोडी केव्हां सोडी।
अलक्ष लक्षाची परवडी। रणीं कुरवंडी पाडिती॥ ६९॥
छेवोनियां रथ-सारथी। रणीं दूषण केला पदाति।
कोपें गदा घेवोनि हातीं। श्रीरामाप्रती धाविन्नला॥ ७५॥
दूषणासी करितां रण। रणीं रामाचा घेईन प्राण।
सांडवीन वाढिवेचा अभिमान। गदा घेवोन चालिला॥ ७७॥
श्रीराम म्हणे नांव दूषण। सांगतां न लाजसी आपण।
दूषण खरासी भूषण। निंद्य वदन दोघांचें॥ ७८॥

धर्में दूषण कर्में दूषण । नामें दूषण कामें दूषण ।
दूषणासी बल दूषण । आंगवण तुज कैंची ॥ ७९ ॥
दूषण म्हणे जल्पसी किती । गदा घेवोनियां हातीं ।
पतंग धांवे दीपाप्रति । तैसे गती धांवला ॥ ८० ॥

एकनाथने इन ओवियोंमें श्रीरामके युद्ध-कौशल्यका वर्णन किया है और साथ-ही-साथ दूषणके नामकी सार्थकताका विवेचन किया है। 'दूषण खरासी भूषण' यहाँ 'खर' शब्दद्वारा श्लेषालंकारकी सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। 'पतंग धांवे दीपाप्रति।' इस उपमाके द्वारा श्रीरामके बल-वैभव और दूषणकी मूर्खता व निस्तेजताका वर्णन किया है।

तुलसीदासने इस स्थलपर श्रीरामके युद्ध-कौशल्यका जो वर्णन किया है उसे भी देखिए।

"श्रीरामजीके कराल बाण ऐसे चले कि मानो बहुत-से सर्प फुफकारते चले आ रहे हों। जब श्रीरामजी क्रुद्ध हुए तब उन्होंने बड़े तीक्ष्ण बाण चलाए। तीक्ष्ण बाणों और खरकी ओर देखकर राक्षस-सैनिक लौटे। उस समय किसीको किसीकी संभाल न रही और वे 'भइय्या! बप्पा!' पुकारने लगे।"

.. ..

"शत्रुको क्रुद्ध देख श्रीरामजीने फिर धनुषपर बाण रखा। फिर तो उनके बाणोंकी मारसे बिकट राक्षस कटने लगे और उनकी छाती, भुजा, सिर, हाथ-पैर आदि कट कट कर इधर-उधर गिरने लगे। बाणोंकी मारसे वे चिक्कारने लगे और पर्वतके समान उनके धड़ पृथ्वीपर गिरने लगे। एक-एक योद्धाके शरीरके कट कर सौ सौ टुकड़े हो गए; परन्तु फिर भी माया करके वे उठ खड़े होने लगे। आकाशमें अनेक भुजा और मुण्ड उड़ रहे हैं और बिना मुण्डके रुण्ड दौड़ रहे हैं। कंक, काग और शृगाल अति भयंकरतासे कटकटाते हैं।"

तब चले बाण कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥
अवलोकि खरतर तीर। मुरिचले निसिचर बीर॥
यक एक कहं न संभार। कर तात मात पुकार॥

.. ..

छाँड़े विपुल नाराच । लगे कटन विकट पिशाच ।।
उर शीश कर भुज-चरन । जहँ-तहँ लगे महिपरन ।।
चिक्करत लागत बान । धरपरत कुधर-समान ।।
भट कटत तनु शतखण्ड । पुनि उठत करि पाखण्ड ।।
नभ उड़त बहु भुज-मुण्ड । बिनु मौलि धावत रुण्ड ।।
खग कङ्क कागशृगाल । कटकटहिं कठिन कराल ।।

(अरण्यकाण्ड)

रामायण वीर-रस-प्रधान ग्रंथ है। इसलिए इस रसके बहुत-से उदाहरण दिए जा सकते हैं। वीररसके साथ-साथ स्थान-स्थानपर भयानक रसका भी परिपाक हुआ है। अरण्यकाण्डके नवे और दसवे अध्यायमें इन दोनों रसोके काफी उदाहरण हैं। भयानक रसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

"एक राक्षस दूसरे राक्षससे कहता है कि 'पहले राम-लक्ष्मण दोनोंका खून शूर्पनखाको पिलाओ, फिर मांस खिलाओ।' खरकी सेनामें चौदह हज़ार वीर राक्षस थे, जिनमें बारह योद्धा बड़े पराक्रमी व निडर हैं, जिनसे देव-दानव भयभीत हो जाते हैं और इन्द्र थरथर काँपता है, जिनके भयसे संसार पीड़ित है, जिनकी क्रोध-दृष्टिसे वीर डरके मारे सूख जाते हैं, जो अपने अस्त्रोंसे मांसको टोचते हैं और ओठोसे रक्त पीते हैं, जिनके भयसे सब लोग काँपते है, जिनकी दाढें व मुख बड़े विकराल है, जो भयके लिए भी भयानक हैं। वे ऐसे दिखाई देते है मानो तीनो लोकोंको निगल जायँगे।"

एक म्हणती शूर्पनखेसी । पाजूं दोघांच्या रुधिरासी ।
मग भक्षावें मांसासी । ऐसा राक्षसीं विवादू ।। ३९ ।।
चवदा सहस्त्र निशाचरां । माजीं निधडे वीर बारा ।
ज्यांचा सुरासुरां दरारा । इन्द्र थरथरां ज्यां कांपे ।। ३९ ।।
जे भ्यासुरत्वें जग दाटित । क्रोधदृष्टि वीर आटित ।
लोहेसि मांस जे घाटित । अवाळी चाटित रक्तपाना ।। ८४ ।।
हाकें कांपती लोकालोक । विक्राळ दाढा विकट मुख ।
जे भयानकां भयानक । तिन्हीं लोक गिळूं पाहती ।। ८५

तुलसीदासने इस स्थलपर बीभत्स-रसका यह उदाहरण दिया है : —

" गीदड़ कटकटाते हैं और भूत, प्रेत-पिशाच अपना-अपना खप्पर सजाते हैं। वेताल वीरोकी खोपडीपर ताल बजाते हैं और योगिनी नाचती है। श्रीरामचन्द्रजीके प्रचण्ड बाण भटोकी छाती, भुजा और मस्तकोको काट-काटकर इधर-उधर गिराते हैं। तिसपर भी वे उठ-उठकर लड़ते हैं और 'पकडो-पकडो' कहकर भयंकर कोलाहल करते हैं। आँतोको लेकर गीध उड़ते हे और उनके लटकते हुए छोरोको पिशाच पकडकर ऐसे दौडते है मानो संग्रामरूपी नगरके रहनेवाले बहुत-से बालक पतग उडा रहे है।"

.. ..

" राक्षसी सेनाके योद्धा बराबर पृथ्वीपर गिरते हे और फिर उठउट-कर लडते है, परन्तु मरते नही। वे अनेक प्रकारकी माया रचते है। चौदह हज़ार राक्षस एक ओर और अकेले श्रीरामजी दूसरी ओर है। यह देखकर देवता लोग डर रहे है।"

कटकटहिं जम्बुक भूत-प्रेत-पिशाच खप्पर साजहीं।
वैताल वीर कपालताल बजार योगिनि नाचहीं॥
रघुवीर-बाण प्रचण्ड खण्डहिं भटनके उर-भुज-सिरा।
जहँ-तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु करहिं सकल भयङ्करा॥
अंत्रावली गहि उडहि गृध्र पिशाच कर गहि धावहीं।
संग्राम-पुरवासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥

.. ..

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस निशिचर एक श्रीरघुकुल मनी॥

एकनाथ और तुलसीदास दोनोने राक्षसोकी सख्या चौदह हज़ार बतलाई है। एकनाथने जहाँ 'चवदा सहस्त्र निशाचरा।' लिखा है वहाँ तुलसीदासने 'चौदह सहस निशिचर।' लिखा है। एकनाथने जिस भावको 'लोहेसि मास जे घाटित। अवाळी चाटित रक्तपाना।' से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने 'अत्रावली गहि उड़हि गृध्र पिशाच कर गहि धावही।' से प्रदर्शित किया है।

सीता-संताप-शमन

सीताकी खोज करते-करते हनुमानजी सूक्ष्म रूप धरके अशोक-वाटिकामें पहुँचे। वहाँ सीताको अतिदुःखित देखा। इतनेमें रात्रि हो गई। उस रात रावणको सीताका स्मरण आया और वह अस्वस्थ हो गया। रावण अब अपने महलमें न रह सका और सीतासे मिलनेके लिए अशोक-वाटिकाको चला आया। सीताके सामने आकर रावणने आत्मश्लाघा और राम-चन्द्रजीकी निन्दा की और सीताको वह अपनी रानी बननेके लिए कहने लगा। इसपर सीताजीने रावणको बुरी तरह फटकारा। रावणने क्रोधमें आकर सीताको मार डालनेके लिए तलवार उठाई। यह देखकर मंदोदरीने रावणका हाथ पकड लिया और सीताके प्राण बचाए। इस प्रसंगके बाद सीताको राक्षसियोंके सुपुर्द कर रावण चला गया। हनुमानजी वृक्षकी आडमें बैठे यह देखकर अतिदुःखी हुए। उन्होंने सीताके दुःखको शान्त करनेके लिए श्रीरामकी दी हुई अंगूठी नीचे डाल दी। अगूठीको हाथमे लेकर सीताके मनमें जो भाव उत्पन्न हुए उनका वर्णन कविने बहुत मार्मिक किया है।

" सीताको दुःखी देखकर हनुमानजीका मन द्रवीभूत हो उठा। उन्होंने सीताके दुःख-निवारणके लिए रामचन्द्रकी दी हुई अगूठी नीचे डाल दी। अंगूठीपर श्रीराम-नाम अंकित था। अंगूठीको सीताजीने उठा लिया और उसे ध्यानसे देखने लगी। मुद्रिकाको देखकर सीताने यह समझा कि स्वयं राम ही यकायक आ गए है। सीताजीने लज्जावश अपना अंचल खीचकर नीचा कर लिया और नीचे देखने लगी। उनका मुख प्रसन्न हो गया। और उनके रोम-रोम-से आनन्द प्रस्फुटित होने लगा। जानकीजीने झुककर मुद्रिकाको नमस्कार किया और आनन्दसे आलिंगन कर चूम लिया। सीता मुद्रिकासे कहने लगी कि 'तू मेरी प्यारी सखी है। समुद्र और पर्वतोंको पार करनेमें तू थक गई होगी। पलगपर आराम करो।"

देखोनि अनुतापिनी सीता। कृपा उपजली हनुमन्ता।
श्रीराम-मुद्रिका होय टाकिता। दुःखावस्था शमावया ॥ १ ॥
मुद्रिका शोभे करीं। श्रीराम-नाम मुद्रिकेवरी।
श्रीराम-मुद्रिकेस बाह्यान्तरीं। सीता सुन्दरी स्वयें देखे ॥ २ ॥

देखतांचि चमत्कार जाहला । स्वयें श्रीरामचि आला ।
ऐसा सीतेसी भाव गमला । सरसावला अंचळू ॥ ३ ॥
श्रीराम आला एकाएकीं । लाजें जाहली अधोमुखी ।
सर्वांगें हर्षली जानकी । सुखोन्मुखीं डुल्लत ॥ ४ ॥
मुद्रिका वंदिली निढळीं । मग आलिंगली हृदयकमळीं ।
स्वानंदें चुंबी जनकबाळी । सुखें वेल्हाळी ! आलीसी ॥ ५ ॥
तूं माझी सखी श्रीराम-मुद्रा । धालूं सेजे, करीं निद्रा ।
श्रमलीस उतरतां समुद्रा । आणि गिरिवरां उल्लंघितां ॥ ६ ॥

इस स्थलका वर्णन तुलसीदासने इस प्रकार किया है :—

"सीताजीको परम विरहाकुल देख, हनुमानजीको एक-एक क्षण एक कल्पके समान बीतने लगा। तब अन्तमें विचार पक्का कर हनुमानजीने श्रीरामजीकी दी हुई अगूठी डाली। मानो अशोक-वृक्षने अंगार दिया और सीताजीने प्रसन्न मनसे उठकर उसे उठा लिया।

सीताजीने उस सुन्दर अगूठीको देखा। उसपर श्रीराम-नाम खुदा था। वे चकित हुई। अगूठी पहचानकर पहिले उन्हे हर्ष हुआ। फिर दुःखके मारे मनमें व्याकुल हुई। श्रीरामजी तो अजेय है। उन्हें कौन जीत सकता है और मायासे यह बनाई नही जा सकती।"

देखि परम विरहाकुल सीता । सो क्षण कपिहि कल्पसम बीता ॥
कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब ॥
जनु अशोक अंगार, लीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥
तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम-नाम अंकित अति सुंदर ॥
चकित-चितै मुद्रिका पहिचानी । हर्ष-विषाद हृदय अकुलानी ॥
जीति को सकै अजय रघुराई । मायाते अस रची न जाई ॥

जो भाव एकनाथने 'देखोनि अनुतापिनी सीता। कृपा उपजली हनुमंता।'से प्रकट किया है उसे तुलसीदासने 'देखि परम विरहाकुल सीता। सो क्षण कपिहि कल्पसम बीता।'से स्पष्ट किया है। इसी प्रकार एकनाथकी दूसरी ओवी और तुलसीदासके सोरठा और उसके नीचेकी चौपाईमें कितना साम्य है! एकनाथने सीताकी आश्चर्यावस्थाको "श्रीराम मुद्रिकेस बाह्यांतरीं। सीता सुन्दरी स्वये देखे।" से प्रगट किया

है। तुलसीदासने इसे "चकित-चितै मुद्रिका पहिचानी।"से व्यक्त किया है। इस आश्चर्यके साथ विषाद और हर्षभी मिला है। एकनाथने सीताके हर्षको "सर्वांगें हर्षली जानकी। सुखोन्मुखी डुल्लत।।" से प्रदर्शित किया है।

प्रियसबन्धी सभी वस्तुएँ वियोगमें दु:खके उद्दीपनका काम करती है। मुद्रिकाको देखकर अचल नीचा करना, उसे हृदयसे लगाना, चूमना और उसको पलगपर श्रम दूर करनेके लिए पौढाना ये सब क्रियाएँ प्रेमकी पराकाष्ठाको दर्शाती है।

सीता प्रेममे इतनी निमग्न थी कि चेतन व अचेतनका कोई बोध उन्हे न रहा। यह देखकर हनुमानजी वृक्षकी आड़में सिसककर रोने लगे।

न म्हणे अचेतन सचेतन। प्रेमपूर्ण सीता सपूर्ण।
तेणें हनुमंतासी आलें रुदन। करी स्फुंदन वृक्षाआड ।। ७ ।।

सातवी ओवीके तीसरे और चौथे चरणकी साम्यताके लिए गीतावलीकी पंक्ति 'देखि गति सिय-मुद्रिकाकी बाल ज्यो दियो रोय।'को देखिए।

पतीविषयीं संशय-रत्नमाला

मुद्रिकाको देखकर सीताको बड़ा आनन्द हुआ और प्रेमसे पूछने लगी :—

"राम-लक्ष्मण कुशल तो है? वे मुझे क्यो नही छुड़ाते है? विकट बाण रखते हुए भी क्या उनमे इतनी शक्ति नही है? मुद्रिके! तू बता कि जब रावण मुझे हर ले गया तो राम-लक्ष्मणने पञ्चवटीमे आकर अतिदु:खित होकर क्या किया? निर्जन वनमे वे मूर्च्छित होकर तो नही गिर पड़े? क्या भेड़िया व बाघने तो उन्हे नही चीर डाला? सिंहने तो उन्हें घायल नही किया? वनैले हाथीने तो उन्हें नही रगड़ डाला?" सीता फिर कहने लगती है कि "ऐसा नही हो सकता। वे तो महावीर है। सिह-व्याघ्र बेचारे उनका क्या कर सकते है! सिह तो उन्हें देखकर डरकर भाग जाते है!! रावणने कुछ कुचक्र तो नही किया? रावणने स्नान-तर्पणके समय विश्वासघात तो नही किया? फल-मूल खाते या सोते हुए दोनो भाइयोंको मार तो नही डाला? क्या मुझे दु:खित जानकर रामने स्वयं अपने प्राण छोड़ दिए? नही तो रावणसे निपटकर क्या वे मुझे छुडाने न आते? मुद्रिके! सच कह कि श्रीराम कही संन्यासी तो

नहीं हो गए हैं ? अथवा समाधिस्थ तो नही हो गए है ? किवा शरीर तो त्याग नही दिया है ? "

मुद्रिका देखोनि दृष्टी । अत्यानन्द मानी गोरटी ।
सीता पुसे सप्रेम गोष्टी । अवस्था पोटीं जे वर्ते ॥ ८ ॥
कुशल असतां राम-लक्ष्मण । माझी कां न करिती सोडवण
करावया नाहीं आंगवण । दुर्धर बाण असोनी ? ॥ ९ ॥
मुद्रिके ! तूं सांगे गोष्टी । रावणें मातें हरिल्यापाठीं ।
दोघे येवोनि पञ्चवटी । अतिसंकटीं काय केलें ? ॥ १० ॥
विजनीं मूर्च्छित पडले ? । कीं वृक-व्याघ्रीं फाडिलें ? ।
किंवा सिहें विभांडिलें ? । कीं रगडिलें वनगजीं ? ॥ ११ ॥
ते तों महावीर निधडे । सिंह-व्याघ्र काय बापुडे ! ।
शार्दूल पळती तयांपुढें । केलें कुडें रावणें ! ॥ १२ ॥
रावणें छळोनि केलें घाता । स्नान-तर्पण सम्पादितां ।
अथवा फळ-मूळ भक्षितां । दोघे निद्रिस्तां मारिलें ? ॥
माझेनि दुःख-शोकें जाणा । स्वयें रामें सांडिलें प्राणा ?५
येऱ्हवीं निवटोनि रावणा । माझे सोडवणा येता कीं ! ॥ १४ ॥
मुद्रिके ! सत्य सांगे मजपाशीं । श्रीराम तरी जाहला संन्यासी ?
अथवा पहुडला समाधिसेजेशीं ? किंवा देहासो त्यागिलें ॥ १५ ॥

तुलसीदासने रामायणमें सीता और मुद्रिकाके सवादका वर्णन नहीं किया है; परन्तु गीतावलीमें इसका विशद विवेचन किया है । श्रीराम-नामाकित अगूठीको देखकर सीता कहने लगी :—

"अरी मुद्रिके ! मै बलिहारी जाऊँ, बता तो क्या भाईसहित कृपालु कोसलनाथ कुशलसे है ? तू अमृतमय वचन सुनाकर मेरी विरहजनित ज्वाला-मालाओको शान्त कर दे । हाय हाय! हित करते हुए भी मैने लक्ष्मणजीका तिरस्कार किया ! ! मेरे हृदयमें अभीतक उसका खेद बना हुआ है। सो ललित लषनलाल अपने रोषको शान्त कर क्या कभी मेरी सुधि करते हैं ? पतिदेव और देवरजीमें आजकल किस विषयकी चर्चा चला करती है ? हे देवी ! बता तो, उन्होंने बहुत-से रीछ-वानर किसलिए बुलाए है ? अरी मुद्रिके ! प्रभु तो शीलके भण्डार, सब प्रकार समर्थ, सच्चे स्वामी, दीनबन्धु और

परम दयालु है । मालूम होता है अभी प्रभुको किसीने मेरा समाचार नही सुनाया। इसीलिए उनके आनेमें इतना विलम्ब हुआ है।"

बोलि, बलि, मूँदरी ! सानुज कुसल कोसलपालु ।
अमिय-वचन सुनाइ मेटहि विरह-ज्वाला-जालु ॥ १ ॥
कहित हित अपमान मै कियो, होत हिय-सोइ सालु ।
रोष छमि सुधि करत कबहूँ ललित लछिमन लालु ? ॥ २ ॥
परसपर पति-देवरहिका होति चरचा चालु ।
देवि ! कहु केहि हेतु बोले विपुल वानर-भालु ॥ ३ ॥
सीलनीधि समरथ सुसाहिव दीनबंधु दयालु ।
दास तुलसी प्रभुहि काहु न कह्यो मेरो हालु ॥ ४ ॥

मुद्रिकाको देखकर सीताजीको आनंद हुआ । एकनाथने आनन्दको व्यक्त करनेके लिए 'अत्यानन्द मानी गोरटी।' लिखा है; परन्तु तुलसीदासने आनन्दके भावको 'बलि' शब्दद्वारा अभिव्यक्त किया है। एकनाथ सीता-द्वारा यह कहलवाते है कि 'कुशल असता राम-लक्ष्मण। माझी का न करती सोडवण।' तुलसीदास इस अवसरपर सीताकी स्वाभाविक उत्सुकताको प्रदर्शित करते है कि 'सानुज कुशल कोसलपालु'। परन्तु एकनाथने सीताकी उद्विग्नताका पूरा विवेचन किया है। सीताका हर्ष बहुत देरतक टिक न सका। उनके मनमें संकल्प-विकल्प पैदा होने लगे । हृदयमें भावोंकी एक आँधी-सी आने लगी। अपने प्रियकी कुशलमे कुछ शंका-सी होने लगी। फिर रामचन्द्रके पुरुषार्थ और पराक्रमका अनुमान कर थोड़ी देरके लिए शंका-समाधान करती; तो दूसरा अनिष्ट विचार मनमें आता कि कही मेरे पति मेरे वियोगमें संन्यासी तो नही हो गए ? समाधिस्थ तो नहीं हो गए अथवा धोखेसे रावणने तो उन्हे नहीं मार डाला ?

तुलसीदासने इस अवसरपर सीता-द्वारा लक्ष्मणका कहना न मानने-पर पश्चात्ताप प्रकट करवाया है। तुलसीदासकी सीताको रामकी सामर्थ्यमें विश्वास है और वह कह उठती है कि 'श्रीरामचन्द्रजीसे किसीने मेरा हाल नही कहा; नही तो वह मेरे छुड़ानेके लिए अवश्य आते।'

जब मुद्रिका सीताके प्रश्नका उत्तर नही देती तो वे पूछने लगती है :—

"मुद्रिके ! तेरे मौनसे क्या यह नतीजा निकलता है कि राम-लक्ष्मण शान्त हो गए ? मुद्रिके ! तूने मार्ग कैसे तै किया ? विस्तृत समुद्र कैसे पार किया ? क्या श्रीरामने मुझे बुलानेके लिए तुझे यहाँ भेजा है ?" ऐसे कहते कहते जानकीजी मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

मुद्रिके ! मौनाचें लक्षण । निमाले राम-लक्ष्मण ?
हेंचि तुझें मौनवचन । अतिसावधान निज मौनें ॥ १६ ॥
मुद्रिके ! तुज कैसें चालविलें वाटा । कैसेनि उल्लंघविलें घाटा ।
समुद्र तरोनि दुस्तर मोठा । कैसेनि परतटीं आलीस ? ॥ १७ ॥
मज संबोधावया येथें । तुज काय धाडिलें श्रीरघुनाथें ।
ऐसें बोलत बोलत तेथें । पडे मूर्च्छित जानकी ॥ १८ ॥

(सुंदरकाड अ० ११)

एकनाथने मुद्रिकाके उत्तर न देनेपर सीताका हतोत्साह और शोकाकुल होकर मूर्च्छित होना बताया है; परन्तु तुलसीदासने मुद्रिकासे यह उत्तर दिलाया है कि रामचन्द्रजी लक्ष्मण और दलसहित कुशल है। लक्ष्मणजीको तुम्हे छोड़नेका पश्चात्ताप है और श्रीरामचन्द्रजीका तो चित्त ही निरुत्साही हो गया है। परन्तु ऋतु विपरीत होनेके कारण तुम्हारा शोध न लगा सके ! इसलिए कुछ न कर सके। अब तुम्हारा पता पाते ही वे उपाय करेगे।

सदल सलषन हैं कुसल कृपालु कौसल-राउ ।
सील-सदन सनेह-सागर सहज सरल सुभाउ ॥ १ ॥
नींद-भूख न देवरहि, परिहरेको पछिताउ ।
धीर धुर रघुबीरको नहिं सपनेहू चित चाउ ॥ २ ॥
सोधु बिनु, अनुरोध रितुके, बोधबिहित उपाय ।
करत हैं सोइ समय साधन, फलति बनत बनाउ ॥ ३ ॥

भारूड

कविकी स्फूर्ति स्वाभाविक होती है। परन्तु प्रत्येक कविका एक क्षेत्र होता है जिसको उद्देश्यमें रखकर वह अपनी रचना करता है। स्वान्तः

सुखाय भी जो कविता की जाती है वह अपनी ओर एक विशेष समुदायको आकर्षित करती है। एकनाथकी कवितामें लोकरंजनका भाव सर्वत्र दिखाई देता है। उन्होने अपने ग्रन्थोमे ऐसी भाषाका प्रयोग किया है जिसे सामान्य साक्षर लोग समझ सके। फिर भी ऐसे विशिष्ट समुदायोके लिए जो इस स्तरतक भी नही पहुंचते हे उन्होंने उनके वातावरण और मनोनुकूल विषयोमें आध्यात्मिक ज्ञान भर दिया है। ये है इनके भारुड जिनकी भाषा और विषयभी तद्रूप है। ये ग्रामगीत है जो लोकप्रिय होनेके कारण 'बहुरूढ' कहे जाने लगे और यह शब्द विकृत होकर भारूड बन गया। ये ग्रामगीत देखनेमे निरर्थक प्रतीत होते है। परन्तु भावगर्भित और अर्थ-पूर्ण हैं। इनमें सन्तोकी वाणीके गहन उपदेश छिपे हुए है। स्व. पागारकरके मतानुसार भारूड़ोका उद्देश्य यह है कि सब लोग सर्वात्मभावका आनन्द भोगें व सकल भेदभावको छोड़कर परमात्म स्वरूपमे लीन हो जायँ।" श्री. न. र. फाटकने भारूडोका उद्देश्य यह बताया है कि 'जोशी, बालसन्तोष वासुदेव, गारुड़ी, पाईक इत्यादि भिन्न भिन्न नामोसे घूमकर भीख माँगनेवाले लोगोंको भिक्षा माँगते समय जो बोलना पडे उसमें परमार्थविषयक विचारोंको गाँवोके लोगोके कानतक पहुँचाया जाय।' भारूड़ोको गारूड़ भी कहते है। क्योंकि इनमे अद्भुतपना, हास्य, विनोद और चमत्कार भी होता है। सुननेवालोका विनोद भी हो और बोध भी। इस उद्देश्यसे इनकी रचना की गई है। इन भारूडोंमें ३५० वर्षपूर्वके महाराष्ट्र-समाजकी उत्कृष्ट झलक पाई जाती है।

कालकी गतिसे महाराष्ट्रकी यह जन-सम्पत्ति गानेवाले लोग धीरेधीरे बहुत कम हो गए और इनके अर्थ जाननेवाले लोग तो उँगलियोंपर ही गिने जा सकते है। इसका अर्थ यही है कि जिस ज्ञानज्योतिके प्रकाशसे महाराष्ट्रके बहुजन-समाजने भी अपने ज्ञान-ज्योतिके दिये जलाये थे वे धीरेधीरे बुझते जा रहे है। बहुजन-समाज या तो अपने उत्थानद्वारा इनसे अब प्रभावित नही होता अथवा उनमे इन धार्मिक प्रतीको की ओर कोई रुचि बाक़ी नही रही है। उत्तरीय भारतमे गौरा-महादेवके गीत गानेवालोंकी जो स्थिति है वही भारूड गानेवालोंकी यहाँ हुई है।

भारूड़ोंका जन्म ज्ञानेश्वरकालमें हुआ; परन्तु इनका उत्कर्ष एकनाथ-कालमे हुआ। नाथके भारूड १२५ विषयोंपर है जिनकी संख्या तीनसौसे ऊपर है। इनमें जोहारोंकी संख्या ५० है। एकनाथके इस रूपक रहस्यको स्पष्ट करनेके लिए उनके जोहारका एक नमूना नीचे दिया जाता है। वे लिखते है कि :—

" कसबा काया-पुर साढ़े तीन हाथ लम्बा है। इसमे ३६० मुहल्ले है, चौदह चौक व दस रास्ते है। शिवाजीपंत इस गाँवके मालिक है। उन्होंने जीवाजीपंतको अपना दीवान बनाकर भेजा है और यह आदेश दिया है कि कसबेकी व्यवस्था ठीक रखना और अन्तमें जमाख़र्चका हिसाब देकर बाक़ी पूरी करना। यहाँ कामक्रोधादि षड्विकारोंने मनाजीकी सहायतासे लूट-मार मचायी है। ये सब प्रतिष्ठित मित्र जीवाजीपंतके सामने सौम्य बन गए। कामाजी कोतवालने बहुतोंको सता डाला है और हरीहरकी इज्ज़त लेनेमें भी किसीका डर नही है। क्रोधाजी फौजदार भी उससे मिल गए हैं। उन्होंने जमदग्नि, दुर्वासासदृश बड़े बड़े ऋषियोंको सता रखा है। लोभाजी चौधरीको पैसोंकी बड़ी लालच है। अहंकार पटेलसे सब गाँव काँपता है। दंभाजीसेठ सदा दौड़धूप करते है। इन सबको रयतपर दया-मया कुछ नही है। गाँव उजाड़ दिया है। शिवाजीपंतको हिसाब दो; नही तो इसके पैरमें सदाके लिए बेड़ी पहना दो। एकनाथमहाराज कहते है कि गुरुकी शरणमें जाओ; तभी तुम्हारे गाँवका संचालन अच्छी तरह हो सकेगा।"

कसब कायापूर लांबी साडेतीन गांव।
तिनशें साठ पेठा तेथें नांदति उमराव।
चौदा चौक दहा रस्ते बसविले अपूर्व।
दिली धन्यानें सनद जिवाजीपंताच्या नांवें।
जोहार मायबाप जोहार महार मी कायापुरीचा।
जन्मोजन्मीं वेसराव्या आहें या गांवाचा॥ जोहार०॥ १॥
शिवाजीपंताने जिवाजी ठेविला दिवाण।
साही षड्विकार त्यासी मिळालें मन।

आप आपणापरी मंधिच ते घेती भोदून ।
तुम्ही सर्व ऐका तुम्हांसी सांगतों खूण ।। जो० ।। २ ।।
कामाजी कोतवाल त्याणें नाडिलें बहुतांसी ।
हरीहरांची अब्रू घेतो भय नाहीं त्यासी ।
क्रोधाजी फौजदार तेही मिळाले त्यासी ।
जमदग्नी दुर्वासा नाडिलें महा महा ऋषी ।। जो० ।। ३ ।।
लोभाजी चौधरी याला पंशाची फार हांव ।
अहंकार पाटिल त्यासी कांपतो सर्व गांव ।
दंभाजी शेटे सर्वदा करिति धांवाधाव ।
दया नहीं रयतेवर केला उजाडचि गांव ।। जो० ।। ४ ।।
शिवाजीपंतास हिशेब द्या अवघा झाडा ।
नाहीं तर याचे पायीं टाका अनुहात खोडा ।
तरिच मायबाप गांव तुमचा चालेल बरा ।
एका जनार्दनि पाय गुरूचे बळकट धरा ।। जो० ।। ५ ।।

मनुष्यकी लम्बाई साढ़ेतीन हाथकी होती है । इस शरीरमें ३६० हड्डियाँ है । इसमें चौदह हड्डियोके जोड़ हैं । दस इन्द्रियाँ है । शिवाजीपंत (परमात्मा) ने जीवाजीपंत (जीव) को यह शरीर सुपुर्द किया है । काम, क्रोध, लोभ मोह, अहंकार और दंभ इस शरीरको सता रहे हैं। जीव यदि इस शरीरका व्यवस्थित प्रबन्ध न करेगा तो गर्भवासके चक्रमें पड़कर सदा जन्म-मरण पाता रहेगा । इनसे मुक्त होनेका एक उपाय यही है कि गुरुकी शरणमें जा ।

एकनाथने इस रूपक द्वारा अध्यात्मके इस गहन तत्त्वको कितनी सरलतासे हृदयङ्गम कराया है कि जीवात्मा इस शरीरका निरीक्षक है, जिसका यह कर्तव्य है कि इस शरीरको षड्रिपुओसे और मनसे सुरक्षित रखे। नहीं तो जन्म-मरणका चक्र सदा भोगना पड़ेगा । इस अध्यात्म तत्त्वके साथ-साथ तत्सामयिक शासनकी तरफ़ भी इशारा किया है जहाँ कोतवाल, फ़ौजदार, चौधरी, पटेल व सेठ गाँवको सब प्रकारसे लूट रहे थे और उन्हें बिल्कुल दया-मया न थी जिसके कारण गाँवके गाँव उजड़ रहे थे ।

'जोहार' जयहरका विकृतरूप है। महार लोग अपनेसे बड़ोंको अभिवादन करते समय इसका उच्चार करते हैं। उत्तर प्रदेशके ग्राममें इस शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें किया जाता है। जोहारका प्रयोग अन्य जातियोंमें न होकर केवल महारकी हदतक महाराष्ट्र-प्रदेशमें सीमित होनेसे क्या यह अनुमान नही किया जा सकता कि इनका संबंध उत्तरीय भारतसे है ?

इन जोहारोसे हमें एक पता और लगता है कि एकनाथ अपनेको कहीं निर्गुण नगरीका महार, कही बिठू पटेलका और कही रामजी पटेलके दरवाज़ेका महार बतलाते हैं। कभी वे अपनेको संत-सभाका महार बतलाते है इत्यादि। इससे स्पष्ट होता है कि एकनाथको इन महारोंके प्रति न केवल सहानुभूति है; अपितु वे उनके साथ समरस हो गए है और महार बननेमें कोई हेय नहीं समझते थे। उन्होंने अपने व्यवहारसे स्पष्ट कर दिया कि वे गीताके इस उपदेशानुकूल आचरण भी करते थे —

"शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।"

भारूड़के रचयिताकी हैसियतसे एकनाथकी तुलना हिन्दीमें कबीरके रूपक रहस्यों और उलटवासियोंसे की जा सकती है जिनकी अटपटी वाणीने भी इन्ही बहुजन-समाजको अधिक आकृष्ट किया। तुलसीदासने भी रूपक रहस्यमयी कुछ रचनाएँ की हैं। वे कहते हैं :—

"अरे भाई! रामनाम कहते चलो; नही तो संसारी बेगारमें पड़ जाओगे जहाँसे छूटना बड़ा कठिन है। हमारे कुटिल कर्मोंने चन्द्र डोलेका नाम लेकर बिना दामका निकम्मा डोला मत्थे मढ़ दिया है जिसके बाँस पुराने है जिसमे बेतरतीब साज लगे हुए है जो सड़ा-गला और तीन कोनेका खटोला है। इसके उठानेवाले कहार एक-से नही है। वे कामरूपी मद्यमें मतवाले हैं और इसीसे एक-से पैर रखते नही चलते। कोई किधर जाता है और कोई किधर! कभी नीचेकी ओर और कभी ऊँचेकी ओर चलनेसे धक्के और झटके लग रहे है और इस खींचातानीमें बड़ा दुःख हो रहा है। रास्तेमें काँटे बिछे है, कंकड़ पड़े है, साँप अलग लिपट जाते हैं। जगह-जगहपर उलझनें है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते है त्यों-त्यों मंज़िल दूर होती चली जाती है। कोई संगी-साथी भी तो नहीं मिलता कि उसके साथ-साथ जैसे-तैसे वहाँतक

पहुँच जायँ। मार्ग बड़ा कठिन है। साथमें राह-खर्च भी नही है। जहाँ जाना है उस गाँवका नामतक याद नहीं। इसलिए हे रामचन्द्रजी ! इस तुलसीदासके सांसारिक भयको, जन्म-मरणके दुःखको आपही कृपा कर दूर कीजिए।"

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँपरि हौ छूटत अति कठिनाई रे॥ १॥
बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे॥
हमहिं विहलकरि कुटिल करमचंद मन्दमोल बिनु डोला रे॥ २॥
विषम कहार मार-मद-माते चलहिं न पाउँ बटोरा रे।
मन्द बिलन्द अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे॥ ३॥
काँट कुराय लपेटनलोटन ठाँवहिं ठाउँ बझाऊ रे।
जसजस चलिय दूरि तसतस निज बास न भेंट लगाऊ रे॥ ४॥
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँकर भूला रे।
तुलसीदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे॥ ५॥

तुलसीदासने तिकोने खटोलेसे शरीरकी उपमा दी है। "कर्म बढ़ई है जिसने हमें मुफ्त शरीररूपी डोला बनाकर दिया है। जन्मजन्मान्तरोंकी विषय-प्रवृत्ति पुराना बाँस है। प्रकृति, महत्तत्त्व और अहंकार ये तीन पाटियाँ हैं तथा सत्त्व, रज और तमोगुण ये तीन पाँव है। यह शरीर क्षणभंगुर है इसलिए इसे सड़ा-गला कहा गया है। जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति ये जो तीन अवस्थाएँ हैं वे ही इस खटोलेके तीन कोने है। ज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह मंद डोला है। इसको उठानेवाले कहार पाँच है और वे है जिह्वा, नेत्र, नासिका, कर्ण और त्वचा। ये सब अपने-अपने विषयकी ओर दौड़ रहे हैं। इन्द्रियाँ कभी तो बुरी वासनाओंकी ओर दौड़ती है और कभी सद्-वासनाओंकी ओर; परन्तु मनके संकल्प-विकल्पके कारण पूरा कुछ भी नही पड़ता। जीव बीचमें व्यर्थ ही धक्के खा रहा है। शरीर-यात्राके मार्गमें अनेक बाधाएँ है। चाहते तो यह हैं कि ब्रह्मानंद पीयूष-पान करें; पर मिलता है विषय-सुखोंका ज़हरीला प्याला ! परमार्थ चलना, तलवारकी धारपर चलना है। सत्कर्म भी नही किए है जिनके बल-भरोसेपर मार्ग तय कर लिया जाय। निर्दिष्ट स्थानतक मालूम नही, फिर ईश्वरकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?"

तुलसीदासने भी एकनाथकी भाँति बहुत-से पद जन-साधारणकी भाषामें लिखे हैं। इस पदमें बहुत-से प्रान्तीय शब्द आए है। मुहाविरे भी ग्रामीण है। इसका उद्देश्य यही है कि उनकी अमृत वाणीसे वे लोग भी लाभ उठा सके जो उच्च भावोंको सुसंस्कृत वाणीमें नही समझ सकते। तुलसीदासने बेगारका भी ज़िक्र यहाँ किया है जिसमे तत्सामयिक बेगार प्रथापर प्रकाश पड़ता ह।

एकनाथने कुछ भारूड़ हिन्दीमें भी लिखे हैं। यद्यपि भाषाकी दृष्टिसे इनका कोई विशेष महत्त्व नही है तथापि इससे उनकी बहुमुखी प्रतिभाका पता चलता है। नाथ परमार्थ बतानेवाले (गारुडी) सपेरा बनते है। अपनी झोलीमें साँप लेकर रास्तेपर खेल दिखानेवाला यह सपेरा बड़े-बड़े महाजनोंको हिन्दी भाषामे पुकार-पुकारकर अपना खल दिखाता है और कहता है कि अज्ञानके कारण मनुष्य काम, क्रोध, मद, मत्सर, दंभ अहंकारमें फँसा हुआ है। जिस प्रकार सपेरा साँपके ज़हरको उतारनेकी जड़ी बूटी (मोहरा) अपने पास रखता है और उससे ज़हर उतारनेमें समर्थ होता है उसी प्रकार ये सपेरा सद्गुरुकी जड़ी बूटी द्वारा सांसारिक षड्रिपुओंको प्रेम, भक्ति व ज्ञान द्वारा नष्ट करनेके योग्य है। वे कहते हैं:—

सुनो संतसज्जन भाई। हम तो निराकारके गारुडी आया है।
ये देखो खेल खेलते रास्तेमें। अलम दुनिया देखत है॥
अबे चल यहाँ हंडी बाग। ज़रा प्रेमका ढोल बजाव।
लग लग लग लग॥
पहिले तो छे साप निकालुं मैदानमें। बड़े-बड़े अजगर।
उसके नाम बताऊँ। काम क्रोध मद मत्सर दंभ अहंकार।
अबबब। अज्ञानके पेटीमें भरे है।
निकालूं सम्हाल बे डंक मारेगा।
ये हाथ डाला। डंक मारा बे डंक मारा। हाय हाय!
बड़ी बड़ी वेदना होती है। अबी जान जाती है।
तुजकुं क्या बताऊं। अबी उतारनेवाला कौन बुलाऊं।
सुनो मेरे पास सद्गुरुका मोहरा है। प्रेमकी बनाऊं सान।
बोधका बनाऊँ पानी। भक्तिके बैठुं दरबारमें।

अबी लगाऊँ घसके । तो सबहि जहर उतारूं ।
ऐसा एका जनार्दनी खेल । भक्ती पुरस्सर लगाया मेल ।

ढोंगकी निन्दा

एकनाथ ढोंगके विरोधी थे । उन्होने इस ढोंगकी निन्दा जगह-जगह की है जिससे कभी-कभी लोगोंको यह भ्रम होने लगता है कि वे भागवत-धर्मके अनुयायी कैसे हो सकते हैं? वास्तवमे वे भागवत-धर्मके सच्चे अनुयायी थे। उन्होने उस कालके उन जोगी-संन्यासियोंकी निन्दा की है जो झूठा वेष बनाकर भोली-भाली जनताको हिन्दू धर्मकी आड़मे ठग रहे थे। एकनाथको उस कालके स्पर्शास्पर्श से भी अत्यन्त क्षोभ था जिसके कारण हिन्दुओकी संख्या दिनोदिन कम होती जा रही थी । उन्होने बड़े अक्खडपनेसे इसकी निन्दा की है ।

" रुक्मिणी-स्वयवरमें बरात देखनेके लिए बड़ी भीड जमी हुई थी ! उस समय धोखेसे एक वेश्याने संन्यासीको स्पर्श कर लिया । इन दोनोंमें जो संभाषण हुआ वह अत्यन्त बोधप्रद है । वेश्याके स्पर्श करनेपर सन्यासीको क्रोध आया । उसने वेश्याकी भुजाओको ठोकते हुए कहा कि 'अरी वेश्या ! तू श्रीकृष्णके इस उत्सवमें इतनी भूल गई है कि तुझे अपनी देहकी सुध-बुध नहीं रही !' फिर लात मारकर कहा कि 'तूने मुझे स्पर्श क्यों किया ?' इसपर वेश्या हँसकर बोली कि 'हे संन्यासी ! तुमने अभीतक क्रोध नही छोड़ा। दण्ड और भगवा वस्त्र धारण करना एक विडम्बना मात्र है। तुम्हें आत्मदृष्टि नहीं है। मैं उत्तम हूँ, तुम नीच हो, यह विषयभेद तुममें मौजूद है ! तुम्हें इसका ज्ञान नही है कि सब प्राणियोमें एकही आत्मा मौजूद है और न तुममें शान्ति ही है ! भगवा वस्त्र धारण करनेसे क्या लाभ ? संन्यासीकी उपाधि तो प्राप्त कर ली है; पर उसके लक्षण नही है। चोटी मुंडवा डाली; परन्तु वासना चौगुनी हो गई है। श्रीकृष्णके दर्शनके पश्चात् भी यदि किसीको स्पर्शास्पर्शका भान हो तो उसे अंधा व अज्ञानी समझना चाहिए।' "

वेश्या आणि संन्याशी । मंडप-घसणी होतसे कंशी ।
कोप आला श्रीपादासी । दंडें वेश्येसी ठोकित ॥
येरी विसरली देहासी । वृत्ती लाधली श्रीकृष्णासी ।
रागें लाथा हाणोनि तिसी । विटाळ आम्हांसी कां केला ?
येरी हांसोनि कपाळ पिटी । अजूनि क्रोध न सोडी पोटीं ।
विटंबिली दंड कासोटी । आत्मदृष्टी तुम्हां नाहीं ॥
मी उत्तम पें लहान । विषयभेदाचें अशन ।
सर्वांभूतीं समसमान । निजात्मज्ञान तुम्हां नाहीं ॥
नाहीं निज शांति रोकडी । तंव कां केली तडातोडी ।
भगवीं नाशिलीं लुगडीं । उपाधी गाढी श्रीपादा ॥
शेंडी टाकिली उपटोनी । वासना वाढविली चौगुणी ।
श्रीकृष्ण देखिलिया नयनीं । विटाळ मानी तो निजांधु ॥

एकनाथका मत है कि 'जिसने षड्रिपुओंको जीता नही और जिसने विषयोंका त्याग नही किया उसका संन्यास व्यर्थ है।'

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और छटवा मन ये छः शत्रु हैं। इनको जिसने अपने वशमें नहीं किया है उसका संन्यास ग्रहण करना केवल एक विडम्बना है। उसका दण्ड धारण करना, सर मुडाना, भगवा वस्त्र धारण करना व्यर्थ है! उसका सन्यास व्यर्थ है! उसका यह वेष एक ढोंग है!'

ज्ञानेंद्रियें पांच सहावें मन । हेचि अरि षड्वर्ग जाण ।
यांचें न करितां निर्दळण । संन्यास घेणें तो विटंबू ।
त्याचा व्यर्थ संन्यास जाण । व्यर्थ त्याचें दंडण-मुंडण ।
व्यर्थ काषाय वस्त्रें ग्रहण । वेषधारण नटाचा ॥

तुलसीदासने भी ढोंगकी निन्दा की है। वे कहते हैं कि 'कलियुगमें उसीको ज्ञानी व वैरागी समझा जाता है जिसने वेदविहित मार्गको छोड़ दिया है और जो आचारहीन है, जिसके बड़े बड़े नख और जटा हैं। वही प्रसिद्ध तपस्वी है जो निन्दनीय वेष और भूषण बनाए रहते हैं और भक्ष्याभक्ष खाते है। उन्हींको योगी और सिद्ध कहकर कलियुगमें सब पूजा

करते हैं। जो नीच वर्णके लोग तेली, कुम्हार, चाण्डाल, कोल, किरात, कलवार हैं वे सब ज्योंही स्त्री मरी या खानेका ठिकाना नही रहा मूँड़ मुडाकर संन्यासी हो जाते है और ब्राह्मणोंसें पैर पुजवाते हैं।

निराचार जो श्रुति-पथ-त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी॥
जाके नख अरु जटा विशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
अशुभ वेष भूषण धरे भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं।
ते योगी ते सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं॥
जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा। श्वपच किरात कोल कलवारा।
नारि मुई गृह सम्पत्ति नासी। मूंड़ मुंडाय भये संन्यासी॥
ते विप्रन सन पाँव पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥

तुलसीदासजी अन्यत्र कहते है कि 'काम, क्रोध, अहंकार, लोभ और अज्ञानने मिलकर ज्ञान-वैराग्यको हर-सा लिया है। संन्यास ग्रहण करनेपर यह मन ऐसा बिगड़ जाता है जैसे पानीके डालनेसे कच्चा घड़ा; अर्थात् मन जबतक शुद्ध और शान्त नही हुआ, तबतक संन्यास लेना और भी अनिष्ट-कारी है। इसलिए जब मन सब विषयोंकी ओरसे तृप्त हो जाय, इन्द्रियाँ जीत ली जायँ और शान्तका अनुभव होने लगे, तब इस आश्रममें प्रवेश करना चाहिए।'

काम, क्रोध, मद, लोभ मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो।
विगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम धरो सो॥

एकनाथ और तुलसीदास दोनोने ही केवल वेषधारी संन्यासियोंकी निन्दा की है। एकनाथने जिस भावको "ज्ञानेंद्रियें पाँच सहावें मन.... विटंबू।" से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने "काम, क्रोध, मद....आम धरो सो।" से प्रकट किया है।

कबीरदासने इस भावको यों स्पष्ट किया है:—

दाढ़ी-मूछ मुड़ाइ कै, हुआ जो घोटम घोट।
मनको क्यों नहिं मूड़िए, जामें भरिया खोट॥

एकनाथ कहते हैं कि 'स्नान करने, दान देने, शास्त्र पढ़ने, वेदाध्ययन करनको तप नही कहते। न तप योग ही है और न यज्ञ करना। तपका अर्थ है वासनाका छोड़ना, जिससे काम-क्रोधका ससर्ग छूटता है। परमेश्वर उसे ही अच्छा तप समझता है जिससे दम्भ, लोभ, अहकार और ममता समूल नष्ट होते है। तब आत्मस्वरूपका दर्शन-लाभ होता है।'

तप म्हणजे नव्हे स्नान। तप म्हणजे नव्हे दान।
तप नव्हे शास्त्राख्यान। वेदाध्ययन नव्हे तप।
तप ह्मणजे नव्हे योग। तप ह्मणजे नव्हे याग।
तप ह्मणजे वासना-त्याग। जेणें तुटती लाग काम-क्रोधाचे।
जेणें दंभ लोभ निःशेष आटे। अह ममता समूळ तुटे।
याच नांव तप गोमटें। मानी नेट-पाटें विधाता।

एकनाथ चाहते थे कि भक्ति, शुद्धि, नामस्मरण ये दिखावा मात्र न हो; अपितु हृदयसे हो। वे कहते है कि :—

"धन जोड़कर भक्तिका दिखावा करनेसे कोई लाभ नही। क्योंकि ऐसा करनेसे मनमें वासना और भी बढ़ती जायगी। ऐसे बगला भक्तोंको—जिनका चित्त वासनाओमें फँसा हुआ है—अन्तरात्माके दर्शन कैसे हो सकते हैं? ऐसे मनुष्यके लिए भक्तिका भाव वृथा है जो एक ओर आशासे मोह करे और दूसरी तरफ अनुष्ठान करे और जिसका मन धनके लिए सदा दौड़ता रहे। यदि धनकी आशा छोड़कर तू अपना मन परमात्मामें लगा देगा तो भक्तिप्राप्तिमे सफलता हो सकेगी।"

गांठी बांधोनि धन, मिरवितो भक्ति। मनीं ते आसक्ति, अधिक व्हावें॥
चित्त वित्तावरी, भक्ति लोकाचारी। देवो अभ्यंतरीं केंवि भेटे॥
आशेतें वीत, लावी काळांतरीं। अनुष्ठान करी दिवस गणीत॥
धनालागीं मन, घेत असे धांवा। भक्तीच्या त्या हावा वाऊगीया॥
धन सांडुनि मन, घेईं जनार्दना एकाएकीं। जाण, भक्ती फळे॥

तुलसीदासने इस भावको यो व्यक्त किया है। वे कहते है कि 'हे हरे! किस उपायसे मै सुख मानूं? मेरा करतब हाथीके दांतोंके समान

तुम तो भली भाँति जानते हो।' भाव यह है कि मैं हूँ तो महा अधम; पर बनता हूँ महात्मा! देखनेमें तो मोर सुन्दर लगता है। मीठी वाणीसे ऐसे वचन बोलता है, मानों अमृतसे सने हों; किन्तु उसका आहार है ज़हरीला साँप! कैसा कठोर है! यह करनी है और वह कथनी! दोनोंमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर है।

हे हरि, कवन जतन सुख मानहुँ।
ज्यों गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम जानहु ।। १ ।।
देखत चारु मयूर बैन सुभ बोल सुधा इवसानी।
सविष, उरग-आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी ।। ३ ।।

एकनाथने यद्यपि रामनामकी महिमा खूब गाई है फिर भी वे मुखमें राम और मनमें वासनाके विरोधी हैं। वे कहते हैं जो मनुष्य रामनाम स्मरण करता है; परन्तु उसके आचरण सदोष हैं तो उसकी भक्ति, श्रवण व मनन वृथा है। रामनामके बलपर अधर्म मत करो। राम-नाम-स्मरणके साथ-साथ शुद्ध कर्म भी करना ज़रूरी है। जब दुर्वासाने क्रोध कर अंबरीषको शाप दिया तो भगवानने सुदर्शन चक्रद्वारा दुर्वासाको कष्ट दिया। यमने बिना अपराध ही माडव्यको सूलीपर चढ़ा दिया जिसके कारण उसे दासपुत्र होना पड़ा। सत्यवादी, धर्मनिष्ठ राजा युधिष्ठिरने एक बार ही "अश्वत्थामा हतो नरो वा कुजरो वा।" कहा जिसके कारण उनका अँगूठा गिर गया। मनुष्यको चाहिए कि वह सन्तोंके आचरणपर चले तो सद्गुरुकी कृपासे अन्तर्बाह्य शुद्ध हो सकेगा।

नाम स्मरतों ह्मणुनी आचाराल दोष।
तरी श्रवण, मनन, भक्ति पडियली वोस।
रामनामाचेनि बळें नका करूं अधर्म।
देव विषयीं तुमचें शुद्ध नोहे कर्म ।।
दुर्वासाचें पाप अंबऋषी दिल्हा शाप।
देवाचेनि चक्रें तया दीधला संताप।
निःशाप मांडव्य शूळावरी वाहिला।
इतक्यासाठीं यमदास-पुत्र झाला ।।
सत्य वचनी धर्म सदा असे एकनिष्ठा।
असत्य मात्रें तयाचा झडला अंगुष्ठ।

एका जनार्दनीं संत सोईनें चाले ।
सद्‌गुरुचेनि कृपें सबाह्य शुद्ध झालें ।।

नाथमहाराज फिर कहते हैं कि 'मुखसे रामराम कहना और मन-माना विषयानुरूप आचरण करनेसे कोई लाभ नहीं है ! जबतक वाणी-द्वारा रामस्मरण और मनद्वारा रामध्यानका संयोग न हो तबतक नाम-स्मरणको पाखंड ही समझना चाहिए। यदि मन और वाणी दोनोंके योगसे नामस्मरण किया जाय तो साक्षात् ईश्वरकी प्राप्ति होती है।'

नाम वदतां हे वैखरी । चित्त धांवे विषयावरी ।
कैसें होता हे स्मरण । स्मरणामाजी विस्मरण ।।
नाम रूपा नाहीं मेळ । नुस्ता वाचेचा गोंधळ ।।
एका जनार्दनीं नाम । नामीं प्रगटे आत्माराम ।।

नाथने ऋण करके उत्सव मनानेको बुरा समझा है। घरके कुटुम्बि-योको भूखा रखकर लौकिक व्यवहारके लिए यज्ञ करना अधर्म समझा है। इसी तरह नाथने जीविका छोडनेको बुरा कहा है। लौकिक मानके लिए जो दान देते है उनको नाथ दभी समझते है।

पाडोनि कुटुंबासी लंघन । सर्व द्रव्य वेंचूनि जाण ।
करूं नये यज्ञाचरण । अधर्मपण ते पाहीं ।।
कां जोविका जोवनवृत्ति । त्याग करूं नये निश्चितीं ।
लौकिकीं मिरवावया स्फूर्ति । त्याग करिती तो दंभ ।।

अन्यत्र श्री एकनाथ कहते हैं कि 'अपने कुटुम्बको दुःखी करके जो अन्न व धन दान देता है वह पूर्ण अधर्म है। इसे शुद्ध पुण्य नही कह सकते। सब कुटुम्बको यथोचित सुखी करके जो धन बचे उसे परोपकारमें व्यय करना उचित है।'

कुटुंब पीडूनी आपण । अन्यत्र द्यावें अन्न धन ।
तोचि अधर्म परिपूर्ण । शुद्ध पुण्य तें नव्हे ।।
कुटुंबेसी यथोचित । सुखी करूनि समस्त ।।
याहूनि उरला जो अर्थ । तो श्रेयार्थ वेंचावा ।

एकनाथका मत है कि 'ब्रह्म प्राप्त करनेके लिए घर-द्वार छोडनेकी आवश्यकता नही है। ईश्वरमें जिसकी चित्तवृत्ति रंग गई है चाहे वह

गृहस्थाश्रमी भी हो अथवा वानप्रस्थाश्रमी, ग़रीब हो या अमीर, ब्राह्मण हो या शूद्र उसे उद्धव मेरी प्राप्ति अवश्य होती है। भगवान कहते हैं कि 'जहाँ मेरा भक्त मेरी भक्ति करता है मैं उसकी भक्तिके वशमें—कुल, वर्ण इत्यादिको न देखते हुए—उसके पास पहुँच जाता हूँ। इसलिए ईश्वरप्राप्तिके लिए गृहस्थाश्रम छोड़नेकी जरूरत नही।'

माझा भावार्थ जेथें होय। तेथें मी जाती कुळी न पाहें।
मी भावाचेनी लवलाहें। वश्य होय निजभक्ता॥
मजमध्यें रंगली चित्तवृत्ति। यालागीं विसरला गृहासक्ती।
त्याशीं गृहास्थाश्रम मीच माझी प्राप्ती। निश्चयें जाण उद्धवा॥

नाथने इस प्रकार प्रपंच और परमार्थ दोनोंका सामंजस्य बड़ी सुन्दरतासे किया है और इसीमें नाथधर्मकी विशेषता है। इसीको तुलसीदासने राजमार्ग बतलाया है।

गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लागत राज डगर सो॥

अध्यात्म-दर्शन

ईश्वर-निरूपण

'अध्यात्म' शब्दका अर्थ है "पारलौकिक परिणामका विचार।" सृष्टिमें इन्द्रियगोचर जो पदार्थ हैं उनकी मीमांसा न करते हुए उनके परे जो पदार्थ है उन्हें ज्ञानद्वारा समझानेका विचार जिस ग्रन्थमें किया जाता है उसे अध्यात्म ग्रन्थ कहते हैं। इन ग्रन्थोंमें युक्ति, प्रमाण और अनुभवसे समझानेका प्रयत्न किया जाता है। और अध्यात्मके अतिरिक्त नीतिसंबन्धी विषयोंकी भी चर्चा की जाती है। सृष्टिमें सबसे उत्तम प्राणी मनुष्य है। उसका सृष्टिकर्ता ईश्वरसे क्या सम्बन्ध है और उसके प्रति मनुष्यका कर्तव्य क्या है—यह स्पष्ट करनेका काम अध्यात्मका है। मनुष्यके पारस्परिक व्यवहार सदा एकसे नही होते; पारस्परिक सम्बन्धानुसार व्यवहारके नियम होते है। उदाहरणार्थ :—राजा–प्रजा, अड़ोसी–पड़ोसी, स्वामी–सेवक, पिता–पुत्र, पति–पत्नी इनके पारस्परिक कर्तव्य उनके विवक्षित सम्बन्धके अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। अस्तु, दूसरोंको कष्ट न देते हुए जिन नियमों-द्वारा मनुष्यमात्र सुख, सम्पत्ति और शांतताका उपभोग करते हैं उसे ही नीति समझना चाहिए।

श्रीएकनाथने अपने ग्रन्थोंमें अध्यात्म और नीति दोनोका बड़ा सुन्दर विवेचन किया है।

एकनाथ अद्वैत मतके अनुयायी थे इसलिए इनके अध्यात्म ग्रन्थोंमें व अभङ्गोंमें इसका पर्याप्त विवेचन किया गया है। उन्होंने ईश्वर, उसे जाननेके मार्ग, बाह्य पवित्रता, अन्तःकरणशुद्धि, नामस्मरण, इन्द्रिय-निग्रह, मनुष्योंका पारस्परिक व्यवहार व अन्य बातोंका विवेचन भी किया है। एकनाथके अध्यात्मविषयक ग्रन्थोंमें 'भागवत और स्वात्मसुख' अधिक महत्त्वके ग्रन्थ हैं। भागवतमें ईश्वरका निरूपण इस प्रकार किया गया है :—

"श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं। मेरा स्वरूप अद्वैत समझो। मै नाम, गुण, वर्ण इत्यादि नाना विभूतियोंसे रहित हूँ। ये सब मिथ्या है। मैं नित्य हूँ। मैं सदा एकरस रहता हूँ और मुझसे किसी प्रकारका विकार नही होता। मेरे स्वरूपको पहचाननेकी गति न बुद्धि, मन व वाणीकी है। इन्द्रियाँ बेचारी तो बुद्धि व मनकी चेरी है। वे इस प्राणाधारको कैसे समझ सकती है!"

माझें स्वरूप अद्वैत जाण। नाहीं नांव गुण वर्ण।
तेथें नाना विभूति लक्षण। मिथ्या जाण वाचिकां॥
माझें स्वरूप नित्य निर्विकार। मन बुद्धि वाचा न कळे पार।
तेथें इन्द्रियें बापुडीं किंकर। प्राणनिधि कें नेणे॥

"ईश्वर सब ब्रह्माण्डमें ओतप्रोत भरा हुआ है। कोई अणु ऐसा नही जिसमें ईश्वर न हो। जीव व ईश्वर, गुण व गुणी, क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ। मैं ही सबकी आत्मा हूँ और सर्वव्यापी हूँ। चिन्मात्र भी मैं ही हूँ।"

मजवेगळा अणु प्रमाण। सर्वथा जाण असेना।
जीव आणि ईश्वर। गुणी आणि गुणावतार।
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ निर्धार। सर्वही साचार मीचि मी।
मजवेगळा गा अणुमात्र। उरलें नाहीं स्वतंत्र।
मी सर्वात्मा सर्वीं सर्वत्र। केवळ चिन्मात्र तेंहि मी॥
मजवेगळें गा येथें कांहीं। उद्धवा आतां उरलेंचि नाहीं।
सर्व साधारण पाहीं। सर्व देहीं मी असें।

उपरोक्त ओवियोमे "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इस सिद्धान्तको कैसी सुन्दरतासे व्यक्त किया गया है!

आगे एकनाथने जीव व ब्रह्मकी एकता स्थापित करनेके अन्य दृष्टान्त दिए है और मायाका भी विवेचन किया है। वे लिखते हैं कि :—

"ब्रह्म माया अथवा अज्ञानके आवरणसे आच्छन्न होनेके कारण जीवकी उपाधि प्राप्त कर लेता है। वास्तवमें जीव और ब्रह्मका संबन्ध उसी प्रकारका है जैसे लहर और समुद्रके पानीका। हवाके चलनेसे लहरें उठती हैं; परन्तु जब हवाका चलना बन्द हो जाता है तो लहरें भी शेष नहीं रहती। इसी प्रकार जब माया किंवा अविद्याका आवरण हट जाता है तो जीव व ब्रह्ममें कोई भेद नही रहता। सृष्टिमें जो वस्तु है वह सब ब्रह्ममय है। कोई पदार्थ अथवा स्थान ब्रह्मसे रिक्त नही। वैकुण्ठ, कैलास, तीर्थ सब जगह अनन्त ब्रह्म समाया हुआ है। इस ब्रह्मका न आदि है, न मध्य और न अन्त ही। ब्रह्म सब कालमें एकरस है। ब्रह्म एक है। एकसे अनेक हो जाता है और फिर भी एक है :—

कल्पना अविद्या तेणें झाला जीव। मायोपाधी शीव बोलीजे तो ॥१॥
जीव शीव दोन्हीं हरिरूप तरंग। सिंधु तो अभंग नेणें हरी ॥ २ ॥
जे जे दृष्टि दीसे तें तें हरिरूप। तयावीण ठाव रीता कोठें ॥ ३ ॥
वैकुंठ कैलासीं तीर्थ क्षेत्रीं देव। अनंतासी अंत पाहतां नाहीं ॥ ४ ॥
आदि मध्य अंतीं अवघा हरी एक। एकची अनेक एक हरी ॥ ५ ॥

तुलसीदासने भी ईश्वर व जीवके अन्तरका कारण मायाको बताया है। वे जीवको ईश्वरका अंश मानते हैं जो चेतन, शुद्ध व आनन्दमय होते हुए भी मायाके वश होकर अपनेको बद्ध समझता है।

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो मायावश भयउ गुसाईं। बंध्यो कीर मरकटकी नाईं ॥

जिस भावको एकनाथने 'जीव शीव दोन्ही हरि रूप तरंग। सिंधु तो अभंग नेणें हरी।' से प्रकट किया है उसे तुलसीदासने 'गिरा अर्थ जल बीचिसम, कहियत भिन्न न भिन्न।'से प्रदर्शित किया है।

ज्ञानेश्वरने इसी भावको यों स्पष्ट किया है :—

"जिस प्रकार हवाके ज़ोरसे पानी हिलता है और उसमें तरंगे उठती हैं, तो इसमें कोई नई वस्तु उत्पन्न नही होती; उसी प्रकार जब हवाका चलना बन्द हो जाता है तो पानी फिर स्थिर हो जाता है और इसम किसी वस्तुका नाश नही होता।"

जैसें पवनें तोय हालविलें । आणि तरंगाकार जाहलें ।
तरी कवण कें जन्मलें । म्हणोंये तेथ ? (ओवी १०६ ज्ञानेश्वरी अ० २)
तेंचि वायूचें स्फुरण ठेलें । आणि उदक सहज सपाट जाहलें ।
तरी आतां काय निमालें । विचारीं पां ।। (१०७ ज्ञानेश्वरी अ०२)

जगतका मिथ्यापन बतलानेके लिए एकनाथ लिखते है :—

"अंधेरेमें पड़ी हुई डोरीको देखकर साँपका भ्रम होता है और हृदय डरसे धड़कने व शरीर काँपने लगता है और हम भाग जानेका प्रयत्न करते हैं; परन्तु यदि दीपक लाया जाय तो यह निश्चय हो जाता है कि यह डोरी है और साँपका भ्रम नष्ट हो जाता है; उसी प्रकार माया व अज्ञानके योगसे हम ब्रह्मकी जगह ससार व उसके प्रपञ्चको सत्य और विषय-प्राप्तिको आनन्द समझ बैठते है । यदि विषयप्राप्तिमे कोई हानि अथवा बाधा हुई तो दुःख अनुभव करते है । इस संसर्गसे देहाभिमान उत्पन्न होता है; यह आत्मज्ञान वेद व शास्त्रोंमें श्रद्धा, श्रवण, मनन, अभ्यास व स्वानुभव द्वारा प्राप्त होता है ।" आत्म-ज्ञानरूपी दीप ज्ञानी पुरुषके अंतःकरणमें प्रज्वलित होते ही प्रकाश हो जाता है और अज्ञानांधकार नष्ट हो जाता है। फिर उसे सब जगह ब्रह्ममय दिखाई देने लगती है।

वेद शास्त्र परि निष्ठित । श्रवण मनन अभ्यास युक्त ।
ज्यासी ब्रह्मविद्या प्राप्त । सुनिश्चित स्वानुभवें ।।
तोचि अनुभव ऐसा । दोरा अंगीं सर्प जैसा ।
न मारितां मरे अपैसा । भव भ्रम तैसा ज्या नाहीं ।।

तुलसीदासने संसारकी असत्यताको सीपमें चान्दीके आभास व मृगतृष्णा एवं रस्सीमें सर्पके आभासके दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया :—

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकर बारि ।
यदपि मृषा तिहुंकाल सोइ, भ्रम न सकै कोइ टारि ।
बूडचो मृगवारि, खायो जेवरीको साँपरे ।
झूठौ सत्य जाहि बिनु जाने ।
जिमि भुजंग बिन रजु पहिचाने ।

जिस भावको तुलसीदासने ' भानुकर बारि'से व्यक्त किया है उसे ज्ञानेश्वरने रोहिणीके जलसे स्पष्ट किया है। आगे तुलसीदासने जिस भावको ' रंक नाकपति होइ 'से दर्शाया है उसे ज्ञानेश्वरने 'भद्र जाति'से व्यक्त किया है ।

हे विषय तरी कैसे । रोहिणीचें जळ जैसें ।
कां स्वप्नींचा आभासे । भद्रजाति ॥ (१२१ ज्ञानेश्वरी अ० २)

एकनाथने संसारकी असत्यता प्रमाणित करनेके लिये एक और दृष्टान्त दिया है। वे कहते है कि 'जिस तरह नटके खेलमें राजा व रानी वास्तविक नही होते उसी प्रकार पुरुष व प्रकृति दोनोके खेल मिथ्या हैं अथवा यो समझो कि स्वप्नमे कोई यह देखता है कि मै राजा हो गया हूँ; परन्तु जागनेपर वह मनुष्य अपनेमें कोई परिवर्तन नही पाता। उसी प्रकार जीवकी हैसियतसे जो जो कर्म किए जाते है उनको मिथ्या ही समझना चाहिए ।

जेंवि नटाची रावो राणी । दोघें खेळती लटकेपणीं ।
तेंवि प्रकृति पुरुष उभउनी । मिथ्यापणीं जो जाणे ।
स्वप्नींचीं नाना कर्में जाण । त्यांचें जागृतीं न लगे बंधन ।
तेंवि मिथ्या निजकर्माचरण । जीवित्वेंशीं जाण जो देखो ॥

एकनाथने जिस भावको " स्वप्नीची नाना कर्मे जाण । त्यांचें जागृतीं न लगे बधन।" मे प्रगट किया है उसे ज्ञानेश्वरने नीचेकी ओवीसे व्यक्त किया है :—

जैसें स्वप्नामाजीं देखिजे । तें स्वप्नींचि साच आपजे ।
मग चेऊनियां पाहिजे । तंव कांहीं नाहीं ॥ (ज्ञानेश्वरी १३८ अ० २)

तुलसीदासने भी ससारको स्वप्नवत् बताया है। वे कहते हैं कि :—

'यदि सपनेमें कोई अपना सिर काटे तो बिना जागे इसकी वेदना दूर नही होती । सपनेमें भिखारी राजा बनता है अथवा नाकपति भिखारी हो जाता है; परन्तु जागनेपर न भिखारीको वस्तुतः लाभ हुआ और न नाकपतिको हानि। संसारके प्रपंचको इसी प्रकार समझना चाहिए।

नट विविध वेष धारण करके नाचता है और भिन्नभिन्न भाव दिखाता है; परन्तु उसके वास्तविक स्वरूपमें कोई परिवर्तन नही होता।'

ज्यों सपने सिर काटे कोई। बिनु जागे दुख दूरि न होई॥
सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ।
जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखा वइ आपुन होइ न सोइ॥

जिस भावको एकनाथने "जेवि नटाची रावो राणी। दोघें खेळती लटकेपणीं।" से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने "जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।" से स्पष्ट किया है।

स्वात्मसुख ग्रन्थमें उपरोक्त कथन बड़ी खूबीसे स्पष्ट किया गया है। एकनाथमहाराज कहते है :—

"जिस प्रकार सूर्यकी किरण सूर्यके आगे दौड़ती है और सूर्यके प्रकाशका अधिकाधिक आभास देती है, चन्दनकी सुगन्ध चन्दनसे अधिक सुन्दर होती है, चाँदनी चन्द्रमासे आगे दौड़कर प्रकाश देती है, उसी प्रकार यह चराचर उस चित्स्वरूपका प्रकाश है। जो मनुष्य इन बाह्य-स्वरूपोंमें व्याप्त ब्रह्मको नही देखता है वह मृगतृष्णाकी भाँति भूला हुआ है। जैसे कोई मनुष्य मोतियोके आभूषणोंको प्रत्येक अंगमें पहन लेता है और सुन्दर दिखाई देता है उसी प्रकार यह सब चराचर उस निर्विकार ब्रह्मके मनोहर आभूषण है। स्वर्ण और आभूषणमें द्वैतभाव कहाँ है? प्रकट देखनेमें भी कंकण सोनेका ही दिखाई देता है। जिस प्रकार किसी वस्त्रको देखते समय धागे ही दिखाई देते है उसी प्रकार सारी सृष्टिको दखनेसे ब्रह्मस्वरूप ही भासमान होता है।

जैसे सूर्याचे किरण। सूर्यापुढें धांवती आपण।
तेणें प्रकाशे सूर्यपण। अधिकाधिक॥
कां चंदनाचा वास। चंदनाहूनि चौपस।
धांवे तेणें अधिक प्रकाश। चंदनत्वा आणी॥

तैसें विश्व प्रकाश तया गभस्ती ।
त्याचीं किरणें त्या त्या नाना व्यक्ति ।
तेथें नास्तिकता जे देखती । ते मूर्ख मृगतृष्णिका ।
हो कां चिद्रत्नाची कीळ । ते हें चराचर सकळ ।
ऐसें नेणती ते समूळ । पटल दृष्टी ।।
मोत्यांचीं करूनियां भूषणें । अंगीं प्रत्यंगीं लेणें ।
बाणलिया सुंदरपणें । शोभे स्वयें ।।
तैसें हें स्वरूप निर्विकार । त्याचें सर्वांग भूषण चराचर ।
तेणें अलंकारलें मनोहर । स्वरूपचि भासे ।।
सुवर्ण आणि भूषण । तेथें काय आहे दोन्हींपण ।
प्रकट पाहतांही कांकण । सोनेंचि दिसे ।।
सौधपट पाहतां दृष्टि । तंतूसीच होय भेटी ।
तैसी अवलोकितां सकल सृष्टि । स्वरूपची भासे ।।

एकनाथमहाराज कहते है कि सर्वव्यापक परमेश्वर अखिल ब्रह्माण्डमें ओतप्रोत भरा हुआ है। जो परमेश्वर अन्तर्बाह्य व्याप्त है और जो जगतका उत्पादक है उसे तलाश करनेके लिए लोग भटकते फिरते हैं। परमात्मा अत्यन्त निकट है यह न जानकर मनुष्य व्रत और तपस्या करते हैं। वे उस परमात्माकी तलाशमें तीर्थयात्रा करके व्यर्थ ही अपने शरीरको कष्ट देते हैं। यह कैसी भूल है ! क्या परमेश्वरसे रहित कोई भी पदार्थ है ? राम तो प्रत्येक वस्तुमें रम रहा है। उसे ढूंढनेके लिए वृन्दावन जानेकी जरूरत नही है। वह तो तुलसीकी मूल, डाल व पत्ते सबमें मौजूद है। उसे तलाश करनेके लिए कही जानेकी आवश्यकता नही है। भगवान् भक्तिसे जहाँ चाहो प्रकट हो सकते है। यदि भावना हो तो तुलसीमें कृष्णके दर्शन हो सकते है।

राम जवळी चूकले । व्रतें तपें भावावलें ।।
तीर्थीं नाहीं क्षेत्रीं नाहीं । जवळीं असतां भ्रांती पाही ।।
जयालागीं सैरा हिंडे । तोचि तया मागें पुढें ।।
असतां सबाह्य अंतरीं । नाहीं म्हणोनि दैन्य करी ।

एका जनार्दन योगें । राम होय जगचि अंगें ।।
पाहूं गेलों तुळसीबन । वृंदावनीं जनार्दन ।।
मूळ डाल पाहतां पान । तुळसीवास जनार्दन ।।
तुळसीवावें कोठें जावों । तुळसीमाजी जनार्दन ।।
एका जनार्दनीं भावो । तुळसी झाला कृष्णरावो ।।

इस अभंगमें 'यह दृश्यमान जगत् ब्रह्म है।' इस सिद्धान्तका कितनी युक्तिके साथ प्रतिपादन किया गया है! कबीरदासने इसी आशयको स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस तरह पुष्पम सुगन्ध मौजूद होती है उसी प्रकार परमात्मा हृदयमे मौजूद है। कस्तूरीके मृगकी भाँति मनुष्य परमात्माकी तलाशके लिए इधर-उधर भटकता फिरता है। यद्यपि कस्तूरी मृगकी नाभिमे होती है, परन्तु वह इधर-उधर घासको ढूँढता फिरता है कि यह सुगन्ध कहाँसे आ रही है।

तेरा साईं तुज्झमें, ज्यों पुहपनमें बास ।
कस्तूरीका मिरग ज्यों, फिर फिर ढूंढै घास ।।

तुलसीदासने विनय-पत्रिकामें इसी भावको व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि 'नाथ! आपको अपने हृदय-कमलमे छोड़कर जो मै बाहर इधर-उधर अनेक साधनोंमें व्याकुल होकर दौड़ता फिरा, इसीसे मैने ज्ञान खो दिया! जैसे महान् मूर्ख मृग अपने ही शरीरमें सुन्दर कस्तूरीका भेद नही समझता, और पहाड, पेड़, लता, पृथ्वी और बिलोंमे ढूँढता फिरता है कि यह सुन्दर सुगन्ध कहाँसे आ रही है, उसी प्रकार मै इधर-उधर सुखके लिए दौड़ रहा हूँ, यद्यपि अखड आनन्दस्वरूप परमात्मा मेरे हृदयहीमें निवास कर रहा है।

याहितें मैं हरि ! ग्यान गँवायो ।
परिहर हृदय-कमल रघुनाथहि, बाहर फिरत बिकल भयो धायो ।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो ।
खोजत गिरि, तरु लता, भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ धौं आयो ।

जिस भावको एकनाथने 'व्रतें तपें भावावले। तीर्थीं नाही क्षेत्रीं गाहीं। जयालागी सैरा हिडे।' से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने 'बाहर फिरत बिकल भयो धायो।' से प्रदर्शित किया है।

सगुण व निर्गुण

मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे अगोचर ईश्वरका ज्ञान साधारण मनुष्योंकी समझसे बाहर है। उनके सामने तो ईश्वरका प्रतीक होना चाहिए। सफ़ेदीकी कल्पना देनेके लिए दूध, सफ़ेद फूल, चूना अथवा किसी दूसरी सफ़ेद वस्तुको प्रस्तुत किया जाता है; उसी प्रकार सामान्य जीवोंको निर्गुणका बोध करानेके लिए प्रतिमा पूजनेके अतिरिक्त दूसरा मार्गही नही है। वेदान्तने भी प्राकृतिक प्रतीक सूर्य, चन्द्र, वरुण, उषा, इन्द्र इत्यादिसे अमूर्त ईश्वरकी कल्पना दिलाई है। सगुणकी निर्मल व निश्चल उपासनासे निर्गुणका बोध होता है। नाथमहाराजने भागवतमें स्पष्ट किया है कि 'यथारुचि व यथाधिकार ईश्वरकी सगुण मूर्ति अथवा निर्गुण स्वरूपको भजना चाहिए।' भगवान श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते है कि 'मेरा स्वरूप निर्गुण है और सगुण भी है। निर्गुण और सगुण दोनोंको एकही समझना चाहिए। सगुण व निर्गुण बराबर है।'

माझें स्वरूप निज निर्गुण। अथवा वैकुंठींचें सगुण।
दोन्हीं एकचि निश्चयें जाण। सगुण निर्गुण सम साम्य॥

तुलसीदासने भी ईश्वरका ऐसाही निरूपण किया है। महादेवजी पार्वतीसे कहते है कि 'वेद, पुराण, विद्वानों और मुनियोंका यही मत है कि सगुण और निर्गुणमें कोई भेद नही है। निर्गुण, अजन्मा और अलक्ष ईश्वर भक्तके प्रेमके कारण सगुण रूप धारण कर लेता है।'

सगुणहि अगुणहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा।
अगुण अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई।

नाथमहाराज कहते हैं कि 'ईश्वरके सगुण और निर्गुणरूप आपसमें एक दूसरेसे इस प्रकार अभिन्न हैं जिस तरह पिघला हुआ घी और जमा हुआ घी दोनों एकही पदार्थ है; परन्तु जमे हुअे घीको खानेमें अधिक मज़ा आता है। इसी प्रकार निर्गुण सगुण एक होते हुए भी सगुण भजन अधिक सरस है।

विघुरले तें तूप होये। थिजलें त्यापरीस गोड आहे।

निर्गुण मन, बुद्धि और वाणीसे अगम्य है। इसलिए उसका जानना कठिन है। निर्गुणके जानेके लिए वेद मौन और शास्त्र अशक्य हैं; परन्तु सगुण मूर्ति सुलभ और सुन्दर है। उसे देखते ही भूख-प्यास मारी जाती है और मन ईश्वरप्रेममें मग्न हो जाता है।

निर्गुणाचा बोध कठिण। मन बुद्धिवाचें अगम्य जाण।
शास्त्रांसी न कळे ऊण खूण। वेदीं मौन धरियलें॥
तैसी सगुण मूर्ति नव्हे जाण। सुलभ आणि सुलक्षण।
देखतां जाय भूक तहान। निवताहे मन सप्रेमें॥

एकनाथने निर्गुण और सगुणकी एकता स्थापित करनेके लिए पिघले हुए और जमे हुए घीका उदाहरण दिया है। तुलसीदासने निर्गुण और सगुणकी एकता बतानेके लिए जल और ओलेका दृष्टान्त दिया है।

जो गुण रहित सगुण सोइ कैसे। जलहिम उपल विलग नहिं जैसे।

मौलवी शेख चाँदसाहबने एकनाथके जीवनचरित्रमें लिखा है कि 'एकनाथने मूर्तिपूजाकी निन्दा की है!' ऐसी ही धारणा कुछ अन्य लोगोंकी है; परन्तु एकनाथ मूर्तिपूजामें विश्वास करते थे। पैठणमे आजभी विठ्ठलकी वह मूर्ति मौजूद है जिसके सामने वे कीर्तन करते थे। इस मूर्तिकी सेवा वे अन्ततक करते रहे। इससे यह सिद्ध होता है कि एकनाथ मूर्तिपूजक थे और मौलवी शेख चाँदका उपरोक्त कथन भ्रममूलक है।

नाथ कहते है कि 'अपने हृदयमें जो चैतन्यस्वरूप परमात्मा है उसे मूर्तिमें आवाहन करे, फिर पूजाके पश्चात् इसका विसर्जन करे और परमात्माको हृदयमें स्थापित कर ले।'

आपुले हृदयींचा चिद्घन। मूर्तीमाजी कीजे आवाहन।
पूजान्तीं करूनि विसर्जन। हृदयीं जाण ठेवावा॥

नाथने विस्तारपूर्वक लिखा है कि मूर्ति कैसी होनी चाहिए। वे लिखते है कि 'पूजा अथवा ध्यानके लिए भगवानकी सुन्दर मूर्ति बनाई जाय जो पुष्ट व हँसमुख हो। कोई अङ्ग कम न हो। सुन्दर चिह्नों

और आयुधोंसे शोभित हो, जिसे देखतेही तन-मन शांत हो जाय। दृष्टि पड़तेही भूख-प्यास शेष न रहे। मूर्ति अत्यन्त प्रसन्नवदन, कृपालु और सुकुमार हो, जिसे देखतेही चित्त आकर्षित हो और सबकोही मूर्ति पसंद आए और अंग पुलकित हो उठे।'

मूर्ति साजिरी सुनयन। सम सपोस सुप्रसन्न।
अंगीं प्रत्यंगीं नव्हे न्यून। सुचिह्न सुलक्षण सायुध।
पाहतां निवे तन-मन। देखतां जाय भूक-तहान।
घवघवीत प्रसन्न वदन। कृपाले क्षण सुकुमार।

जे देखतांचि जीवीं जडे। अतिशयें सर्वांसी आवडे।
पाहों जातां निजनिवाडे। पूर चढे प्रेमाचा॥

भागवत, अ० ११ ओ० १२८३–६०

नाथने अपना अनुभव भी कहा है कि 'भक्तोकी प्रार्थना स्वीकार करके पाषाण-प्रतिमासे ईश्वर प्रगट होता है।'

आतां ही प्रत्यक्ष प्रमाण। दासाचेनि वचनें जाण।
पाषाण-प्रतिमे देवो आपण। आनंदघन प्रगटे पैं॥

मूर्तिपूजाके संबन्धमें एकनाथके विचार शुद्ध और नीतिके अनुसार हैं। मुर्गी अथवा बकरीको मारकर उनका नैवेद्य सिन्दूरित (शेंदरी) देवताओके अर्पण करनेकी जो घिनौनी और जीव-हिसक प्रथा बहुत-सी जातियोमें है उसको वे अत्यन्त निद्य समझते थे। वे कहते है कि ये जातियाँ पत्थर-कंकड़ोंको बड़ेबड़े देवता समझकर पूजा करती है। इनके ये कृत्य अन्तमें इन्हें कष्टदायक होते है। जिन्दा जीवकी हत्या करके ये पत्थरोंको नैवेद्य चढ़ाते है। रांडों और लुच्चोंकी भीड़ इकट्ठी होती है और इनमेसे किसीके सिरपर देवता आता है। ये लोग इन देवताओके सामने नाक रगड़ते है कि 'हम पापी हैं। हमारी रक्षा करो।' एकनाथ कहते है कि 'यह सब मूर्खपना है। इसमें मत भूलो।'

म्हणती देव मोठे मोठे। पूजताती दगडगोटे ॥ १॥
कष्ट नेणती भोगिती। वहा वहा दगडासी म्हणती॥ २॥

जीत जिवा करूनि वध । दगडा दाविती नैवेद्य ॥ ३ ॥
रांडा पोरें मेळ झाला । एक म्हणती देव आला ॥ ४ ॥
नाक घासुनी गव्हार । देवा म्हणती गुन्हेगार ॥ ५ ॥
एका जनार्दन म्हणे । जन भुलले मूर्खपणे ॥ ६ ॥

इस अभगसे यह सिद्ध होता है कि पशुहिसा एकनाथको बड़ी खटकती थी जिनके आचरण अत्यन्त निंद्य हैं, जिनके काम सदा स्वार्थयुक्त और जिनके मनमें सदा द्वैतभाव होता है उनके अन्तःकरणमे आत्मस्वरूपके कभी दर्शन नही होते। नाथमहाराजका यह मत है कि 'यह समझनेवाले बिल्कुल मूर्ख है कि मनुष्य कितने ही दुराचार करे, सैकडों मनुष्योंकी गर्दन काटे, मरणपर्यंत विषयभोग भोगे; फिर भी देवताके सामने नाक घिसनेसे उसके सब पाप माफ हो जायँगे।'

ईश्वरप्राप्तिके साधन

एकनाथने ईश्वर, जीव व मायाका केवल बौद्धिक विवेचन नही किया है वरन् ईश्वरप्राप्तिके साधन भी एक अनुभवी संत व सिद्धकी भाँति बतलाए हैं। वे कहते है कि 'ईश्वरप्राप्तिके लिए शम, दम, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा मन, बुद्धि, वाणी और इन्द्रियोंको वशमें रखा जाय। प्राणको आत्मामें सन्निवेश किया जाय। वाणीको मेरे नामस्मरणमें लगाया जाय, मनको ईश्वरी ध्यानमें लगाया जाय। इन्द्रियोंका दमन किया जाय। बुद्धिको आत्मविवेकद्वारा वशमे रखा जाय। जीवको परमात्म-सुखमें लगा दिया जाय। ऐसा करनेसे जीव अवश्य ही ईश्वरत्वको प्राप्त करता है।'

यालागीं शमदमाच्या अनुक्रमीं । मन बुद्धि वाचा इन्द्रियें नेमीं ।
प्राण नेमूनि प्राण धर्मीं । आत्मारामीं पावशी ॥
वाचा नेमावी माझोनि नामें । मन नेमावें ध्यान-संभ्रमे ।
प्राण नेमावा प्राणायामें । इन्द्रियें दमें नेमावीं ॥
बुद्धि नेमावी आत्मविवेकें । जीव नेमावा परमात्म-सुखें ।
इतक्यानें तूं अवश्यकें । होशि कौतुकें मद्रूप ॥

तुलसीदासने भी ईश्वरप्राप्तिके लिए श्रद्धा, जप, तप, व्रत, यम, नियम और श्रुति अनुरूप शुभ धर्माचारको साधन बताया है।

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जो हरि-कृपा हृदय बस आई॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे श्रुति कह शुभ धर्म अचारा॥
सो तृण हरित चरै जब गाई। भाववत्स शिशु पाय पन्हाई॥

एकनाथमहाराज कहते है कि महात्मा पुरुष इस चंचल मनरूपी घोड़ेको विवेकके कोड़े मारकर क़ाबूमें रखते है। मन जब इधर-उधर भटकने लगे तो विवेकद्वारा उसे वशमें लाया जाय। मन यदि अधर्मकी तरफ़ दौड़े तो विवेक उसे धर्मकी ओर हाकलाए। यदि मन, काम, क्रोधकी तरफ़ भागे तो विवेक उसे केश पकड़कर खीच लाए। यदि मन निन्दाकी तरफ़ निकले तो विवेक उसे पकड़ ले। यदि मन विषयकी स्वतत्रता चाहे तो विवेक वैराग्यकी लकड़ीसे उसे मारकर रोक रखे। यदि मन कल्पनाकी तरफ़ दौड़े तो विवेक, अविवेकी मनके केश पकड़कर क़ाबूमें रखे। यदि परस्त्री व परधनकी ओर मन दौड़े तो विवेक-युद्धद्वारा उसकी हत्या करके उसे अपने वशमें कर ले। ऐसा मन व विवेकका झगड़ा सद्गुरुके समक्ष आया। उन्होने इसका तस्फ़िया करनेके लिए अद्वैत-वाड़ेमें बन्द कर दिया।

मन जेथें विकल्पूं धांवे। तेथें महामारी विवेकु फावे।
मन जेथें अधर्मीं भवे। तेथें विवेक धांवे हाकितूं॥
मन जाय काम क्रोधापाशीं। विवेक धरूनि वोढी केशीं।
मन रिघतां निंदेपाशीं। विवेक त्याशीं बुकली।
मन म्हणे विषय सुटी। विवेक हाणे वैराग्यकाठी।
मन धांवतां कल्पनेपाठीं। विवेक उठाउठी झोटी धरी॥
परदारा परधन। अभिलाषूं धांवे मन।
तेथेंही विवेक पावोन। रणकंदन आरंभी॥
ऐसा मन-विवेकाचा झगडा। गाऱ्हाणें आलें सद्गुरुपुढां।
तेणें करावया निजनिवाडा। अद्वैत-वाडा कोंडिलें॥

गीतामें अर्जुनने जब श्रीकृष्णसे यह प्रश्न किया कि

चंचलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्कृतम् ।।

तो श्रीकृष्णने यही उत्तर दिया कि 'अभ्यास और वैराग्यसे मनको वशमें किया जा सकता है।' एकनाथने इसीका बडा बोधप्रद व विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने दैनिक अनुभवोंद्वारा मनको वश करनेका उपाय बताया है। "प्रत्येक प्राणी यदि अपने मनको इस प्रकार स्वाधीन कर ले और जब जब मनरूपी पक्षी परधन व परकान्ताको प्राप्त करनेके लिए वेगसे उड़े तब तब विवेकरूपी शस्त्रसे उसके पंख तोड़ दिए जायँ तो इस संसारमें दुराचरण, अनीति और अनाचार रहनेही न पायेंगे। फिर तो प्रत्येक घर, कुटुम्ब, देश एवं राष्ट्रमें शांतता और आनन्दका राज्य स्थापित हो जायगा।"

नाथमहाराजके ग्रन्थोंमें धर्म और नीतिकी अविरत धारा बह रही है। यहाँतक कि भावार्थ रामायणके युद्धकाण्डमें भी इसकी झलक दिखाई देती है। कनक, कान्ता व कादम्बरी (मद्य) इन तीनोंने मनुष्यमात्रको अपने वशीभूत कर रखा है। देवताओके राजा इन्द्र अप्सराओंको अपने साथ विमानमें लेकर आकाशमें विहार कर रहे है। यह देखकर हनुमानजी कहते है :—

"जो स्त्रीके प्रेममें फँस गया है, जो मद्य पीनेमें मतवाला हो गया है और जो धनके लोभमें पड़ गया है उसका विवेक बाक़ी नही रहता। जो मनुष्य वेश्यागामी होते है वे सदा उन्मत्तकी भाँति आचरण करते है। उन्हें स्वार्थ और परमार्थका ज्ञान नही होता। वे स्वेच्छाचारी गधेकी तरह आचरण करते है। मद्यपान करनेवाला मनुष्य अपनी संपत्ति नष्ट कर देता है और संसारमें निंद्य होता है। जो मनुष्य धन नष्ट करके मद्यपान करते है वे अपनी आत्माका नाश करते है और कल्पभर नरक-वास करते है। धनके जो मतवाले है उन्हें स्वप्नमें भी सुख नही मिल सकता। वे ऐसे दुर्लभ शरीरको—जो मोक्षका साधन है—वृथा कष्ट

देते हैं। ये लोग कष्टसे कमाई हुई संपत्तिको बड़ी हिफ़ाज़तसे रखते हैं और धूल-मिट्टी खाकर मरते हैं। कनक, कान्ता और कादम्बरीमेंसे एक ही इतना बलिष्ठ है कि उससे मनुष्य नाशको प्राप्त होता है। फिर जहाँ ये तीनो मिलते है वहाँ दुःखका क्या ठिकाना है !

जो स्त्रीसवें निरत जाला । मद्यप्राशनीं मातला ॥
जो धनलोभें भुलला । त्याचा गेला विवेक ॥ १०८ ॥
वेश्यागमनीं जे रत । ते सर्वदा अति उन्मत्त ॥
नाठवे स्वार्थ-परमार्थ । स्वेच्छा विचरत खर-जैसे ॥ १०९ ॥
स्त्रीकामाची ऐसी रीती । ऐका मद्यप्यांची स्थिती ॥
वेंचून पदरींची संपत्ती । स्वयें होती जगनिंद्य ॥ ११४ ॥
वेंचूनियां ऐसें धन । करिताती मद्यपान ॥
ते निजात्मघाती संपूर्ण । नरकसेवन आकल्प ॥ ११६ ॥
धनलोभी जे लुब्धक । स्वप्नीं न देखती सुख ॥
दुर्लभ शरीर वृथा कष्टविलें । जेणें फळे निजमोक्ष ॥ ११९ ॥
कष्टें जोडिली संपत्ती । ते ठेविती अति निगुती ॥
तोंडीं दगड माती घालिती । आपण मरती धुळी खात ॥ १२४ ॥
ऐसी एक-एकाची जाती । अधःपाता स्वयें नेती ॥
तिन्हीं एकत्र जेथें मिळती । तें दुःख किती सांगावें ? ॥ १२५ ॥

उपरोक्त उदाहरणमें गीताके इस श्लोककी झलक पाई जाती है :—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

श्रीशंकराचार्यने भी इसी आशयका श्लोक कहा है :—

कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः ।
ज्ञानरत्नापहाराय तस्माज्जागृत जागृत ॥

तुलसीदासकी रामायणमें रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते है :—

"हे भाई ! काम, क्रोध और लोभ तीन बड़े दुष्ट है ! सो ये बड़े बड़ ज्ञानके समुद्र मुनियोंके मनको भी क्षणभरमें डिगा देते है। लोभकी सेना

तो इच्छा और पाखण्ड है और कामकी सेनामें अकेली स्त्री है और क्रोधकी सेनामें कठोर वचन है। यही श्रेष्ठ मुनियोंकी विचारी हुई बात है। हे लक्ष्मण! कामदेवकी सेनाको देख जो धीर बने रहें, वे ही संसारमें गिनने योग्य है। कामदेवको एक स्त्रीका बडा बल है, सो जो स्त्रीसे बचे वही बड़ा वीर है।"

तात तीन अति प्रबल, खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि-विज्ञान-निधान-मन, करहिं निमिष-महँ क्षोभ॥
लोभके इच्छा दम्भ बल, कामके केवल नारि।
क्रोधके परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचार॥
लक्ष्मण देखहु काम अनीका। रहहिं धीर तिन्हके जगलीका॥
यहिके एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारा॥

एकनाथने लक्ष्मीको दुःखका मूल बतलाया है। वे कहते है कि 'लक्ष्मीकी प्राप्तिसे जो सुख होता है उसे केवल दुःख समझना चाहिए। जो सुख मानते है और जो लक्ष्मीकी रक्षा करते है उनके प्राण नष्ट हो जाते हैं। जो इसकी इच्छा करते है वे रणमें नष्ट होते है। जो बच जाते हैं उनका जीवन रोते रोते बीतता है। ये हैं लक्ष्मीकी करतूतें!'

लक्ष्मी आलिया जें सुख। सुख नव्हे तें केवळ दुःख।
सुख मानिती ते केवळ मूर्ख।
प्रतिपाळते प्राणा मुकले। अभिलाषि ते रणीं पडले।
उरले ते रडत गेले। लक्ष्मीचें केलें असें आहे।

अन्यत्र एकनाथ कहते है कि 'जहाँ द्रव्य, स्त्री और ज्ञानका गर्व होता है उसे श्रीरामचन्द्रका महत्त्व स्वप्नमें भी मालूम नहीं हो सकता।'

जेथवरी द्रव्य-दारा-अभिमान। जेथवरी ज्ञान-गर्व गहन।
त्यासी श्रीरामाचें महिमान। स्वप्नीं ही जाण लक्षेना॥

तुलसीदासने इसी आशयको नीचेके दोहेसे प्रकट किया है:—

वे कहते है कि 'दूसरोंसे शत्रुता करनेवाले, पराई स्त्रीसे प्रीति करनेवाले, पराये धनपर इच्छा रखनेवाले, दूसरेकी निन्दा करनेवाले ऐसे मनुष्य मानों पामर महापापी मनुष्यका रूप धारण किए हुए दूसरे राक्षस है।'

परद्रोही परदार-रत, परधन पर अपवाद ।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥

एकनाथ कहते हैं ' कि पराई स्त्री और पराया धन जिसके मनको अपवित्र नही कहते, गंगादि तीर्थ उसके चरणस्पर्श करनेकी अभिलाषा करते हैं।'

परदारा आणि परधन । सर्वथा नातळे जयाचें मन ।
गंगादि तीर्थें त्याचें जाण । चरणस्पर्शन वांछिती ॥

तुलसीदासने इसी भावका वर्णन यों किया है। वे कहते है ' कि ऐसे संतजन जो सुवर्णको काँचके समान समझते है और स्त्रीको काष्ठ या पाषाणके समान समझते है, वे ब्रह्मके समान है।'

कंचन काचहि सम गनै, कामिनि काष्ठ पषान ।
तुलसी ऐसे संत-जन, पृथिवी ब्रह्म-समान ।

अथवा

कंचनको मृतिका करि मानत । कामिनी काष्ठ-शिला पहिचानत ।
तुलसी भूल गयो रस एहा । ते जन प्रकट रामकी देहा ॥

एकनाथके धर्मग्रन्थोंके समान उनके कितनेही अभंग रसाल और वोधप्रद है। कृष्णजयन्तीके दिन सायंकालमें पैठणमें नाथमहाराज मन्दिरमें खड़े हुए कीर्तन कर रहे हैं। श्रोता लोग कीर्तनमें निमग्न है। एकनाथका ध्यान पाण्डुरंगकी मूर्तिकी तरफ़ लगा हुआ है कीर्तन सुननेके लिए लोगोंकी भीड़ नाथ-मन्दिरकी तरफ़ उमड़ी चली आ रही है। मन्दिरमें तिल धरनेको जगह नही है। कुछ लोग वृक्षोंपर चढ़कर कीर्तन सुन रहे है। कुछ घरोंकी छतोंपर बैठे सुन रहे है। दीपोंकी ज्योतिसे मन्दिर जगमगा रहा है। एकनाथके पीछे उद्धव व केशवकी जोड़ी खड़ी हुई है और मृदंगपर ठेका बज रहा है। कीर्तनके बीचबीचमें हरिनामका गजर चालू है। एकनाथ यह भजन गा रहे हैं।

हे मन! विषयसे प्रेम छोड़ दो। विठ्ठलसे प्रेम कर। आँख खोलकर विठ्ठलके दर्शन कर और विठ्ठलमें ही अपने मनको पूर्णरूपसे लगा दे। जनार्दनकी शरणमे जानेसे मन विठ्ठलको प्राप्त हो जायगा।

अभग

मन सांडी विषय गोडी । लावी विठ्ठलाची गोडी ॥
विठ्ठल विठ्ठल सांवळा । पाहें उघडाची डोळां ॥
विठ्ठल विठ्ठल निधान । एक मन करी उन्मन
एका जनार्दनीं शरण । मन झालें विठ्ठलपूर्ण ॥

तुलसीदासने एकनाथके इस अभंगसे मिलते हुए भावको विनय-पत्रिकामें यों प्रदर्शित किया है :—

"हे मूर्ख मन ! मेरी शिक्षा सुन। भगवानके चरणोसे विमुख होकर किसीको सुख नही मिला। हे दुष्ट ! अभी सबेरा ही है, अभी कुछ बिगड़ा नही है। अब भी भगवानकी शरणमें चला जा। वेदोंने यह सन्देह दूर कर दिया है कि बिना राम-भजन किये विपत्तियोका नाश नही हो सकता। हे तुलसीदास ! इसलिए तू भी सब आशा-भरोसा छोड़कर श्रीरघुनाथजीका अनन्य सेवक हो जा।"

सुन मन मूढ़ ! सिखावन मेरो ।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझ सबेरो ॥ १ ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति-सन्देह निबेरो ॥
तुलसीदास सब आस छाँड़िकर, होहु राम कर चेरो ॥ ४ ॥

एकनाथने कामवासनाको अत्यन्त बलवान बताया है। जबतक कामको वशमें नही किया जाता तबतक ब्रह्मसाधन कठिन ही नही, अप्राप्य है। कामदेवने बड़े बड़े देवताओं और राक्षसोको जिन्हें अपने ज्ञान व पुरुषार्थका घमंड था, नाच नचाया। फिर बेचारे मनुष्यकी गणना ही क्या है ! शंकर-जैसे योगी काम-बाणसे पीड़ित हुए और जब उनकी समाधि भंग होने लगी तो उन्होंने तृतीय नेत्र खोलकर कामदेवको भस्म कर डाला। ब्रह्मा जो सृष्टिका निर्माता है उसे भी अपनी पुत्रीके लावण्यपर मतवाला बना दिया। देवाधिदेव इन्द्रको मदान्ध कर दिया,

जिन्होंने अहिल्याकी अलौकिक सुन्दरतापर मुग्ध हो उसके अधरामृत-पानसे अपने देवत्वको नष्ट किया। चन्द्रमाने भी इसी कामदेवसे पीड़ित हो अपनी गुरुपत्नीके साथ संभोग किया। नारद-जैसे योगी व ऋषिके गर्वको चूर किया। मदनने रावणका सर्वस्व नाश कर दिया। सीता-हरणका परिणाम यह हुआ कि राम-रावण-युद्ध हुआ और उस वंशमें सिवाय विभीषणके कोई न बचा। दुःशासनने द्रौपदीका वस्त्र हरण किया। भीमने अपनी गदासे उसे मारकर उसका रक्त पिया। इसी मदनसे पीड़ित भस्मासुरको मोहनी रूप धारण करके भगवानने भस्म कर दिया। बालि, अपने भाईकी स्त्रीपर मोहित हो गया था। उसे श्रीराम-चन्द्रजीने बाण द्वारा मारकर सुग्रीवको राज्य दिया। विश्वामित्रकी तपस्यासे व्याकुल हो इन्द्रने मेनकाको भेजा। मेनकाके रूपपर मोहित हो विश्वामित्रने अपनी सारी तपस्या नष्ट कर डाली। केवल शुकदेवने अपनी तपस्यासे मदनको व्याकुल कर दिया। जिसने भगवानकी पूर्ण भक्ति की उसके चरणोंपर कामदेव बँधा पड़ा रहता है।

एड़का मदन ! तो केवळ पंचानन ॥
धडक मारिली शंकरा। केला ब्रह्माचा मातेरा।
इन्द्र चंद्रासी दरारा। लाविला जेणें ॥ तो० ॥ १ ॥
धडक मारिली नारदा। केला रावणाचा चेंदा।
दुर्योधना मारिली गदा। घेतला प्राण ॥ तो० ॥ २
भस्मासुर मुकला प्राणासी। तेचि गती झाली वालीसी।
तिसरा विश्वामित्र ऋषी। नाडिला जेणें ॥ तो० ॥ ३ ॥
शुकदेवानें तप करूनी। एडका आणिला आकळूनी।
एका जनार्दनाचे चरणीं। बांधिला जेणे ॥ तो ॥ ४ ॥

तुलसीदासने भी इस भावको यो प्रकट किया है :—

वे कहते हैं कि 'संसारमें ऐसा कौन-सा मनुष्य है जिसे लक्ष्मीके गर्वने मतवाला नही किया, प्रभुताने जिसे उद्दण्ड नही बनाया और मृगनयनीके नेत्ररूपी तीरोंने जिसे व्यथित न किया हो ?

जहाँ श्रीराम हैं वहाँ कामवासनाएँ नहीं और जहाँ कामवासनाएँ हैं श्रीराम नहीं । ठीक उसी प्रकार, जैसे छाया और धूप एक साथ नहीं रह सकते । कामरूपी सर्प जब किसी मनुष्यको डस लेता है तो विषयरूपी नींब कडुआ नहीं लगता । तुलसीदासजी फिर कहते है कि :—

'स्त्री दीप-शिखाके समान है । अपने मनको स्त्रीकी आसक्तिसे दूर रखो, नहीं तो पतंगेकी तरह नष्ट हो जाओगे । इसलिए हे जीव ! काम और गर्वको छोड़कर श्रीरामजीका भजन कर और सतसंग कर ।

श्रीमद वक्र न कीन्ह किहि, प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगनयनीके नयन सर, को असि लागिन जाहि ॥
जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
एक संग निवसत नहीं, तुलसी छाया धाम ॥
काम भुजंग डसत जब जाही । विषय नींब कटु लगत न ताही ॥
दीप-सिखा-सम जुवति-जन-मन जन होसि पतंग ।
भजहिं राम तजि काम मद करहिं सदा सत संग ।

श्रीनाथमहाराज भी अपने एक अभंगमें ऐसाही कहते हैं :—

मुझे लोभरूपी सर्पने डस लिया है और स्वार्थरूपी संपत्तिसे मेरे पैर भारी हो गये हैं । आशारूपी तरंगोंने मेरे शरीरको तपा डाला है, मुझे विषयरूपी नींब मीठा लगता है और भजनरूपी मधुर गुड कडवा लग रहा है । अर्थके नाशसे मेरा गला घुट रहा है । असत्य और अशुद्धिके अजीर्णकी छलकें आ रहीं है । हे गुरुदेव ! दया करके मेरे संतापको शान्त कीजिए और मेरा कल्याण कीजिए ।

लोभ सर्प डंखला करूं काय । स्वार्थ-संपत्तीनें जड जाहला पाय ।
आशा लहरी तापला माझा देह । तृप्ती वारा घाली वो गुरुमाय ॥
विषय निंब बहु गोडिये आला । भजन गूळ तो मज कडू झाला ।
वित्तहानीचा गळा झेंडू आला । असत्य अशुद्धाच्या येताती गरळावो ॥

संसारकी असारता

संसारकी असारता और क्षणिकताका वर्णन भी एकनाथने बड़ा सुन्दर किया है। वे कहते हैं कि 'यह सब संसार असार व क्षणिक है। पक्षी आँगनमें दाना चुगनेके लिए आते हैं और चुगकर उड़ जाते हैं। लड़कियाँ घरौंदे बनाती हैं, गुड्डों-गुड़ियोंके विवाह करती हैं और फिर सब खिलौनेको तोड डालती हैं। यात्री आकर किसी वृक्षके नीचे रातको विश्राम लेते हैं और प्रातःकाल होते ही उठकर चले जाते हैं। मार्गमें बहुत-से लोगोंसे भेंट होती है; परन्तु इन लोगोंसे कोई मोह या संबन्ध नहीं जोडता। इसी प्रकार जबतक इस संसारमें प्रारब्धानुसार जीवित रहना है तबतक उदासीन व अलिप्त रहना चाहिए।

ऐसें असावें संसारीं। जोंवरी प्राचीनाची दोरी॥
पक्षी आंगणासी आले। आपला चारा चरोनी गेले॥
मुली घराचार मांडिला। खेळ मोडोनी टाकिला॥
वाटसरू वाटां आले। प्रातःकाळीं उठोनि गेले॥
मार्गी बहु साल भेटले। नाहीं मन तेथें गुंतलें॥
एका विनवी जनार्दन। ऐसें असतां भय कोणा॥

(एकनाथ–बाड)

भागवतमें भी इसी आशयकी ओवियाँ हैं जिनमें बतलाया गया है कि 'मार्गमें जैसे दस जगहके लोग आकर मिलते हैं; परन्तु एक दूसरेसे मोह-ममता नहीं रखते बल्कि उदासीन होते हैं उसी प्रकार इस संसारमें हमें माया-जालमें फँसना न चाहिए। रास्तेमें मिले हुए यात्री, जिस तरह अपने-अपने स्थानको अलग-अलग चल देते हैं अथवा नदीके प्रवाहके कारण एक जगह आकर इकट्ठे हुए तृण हवाके झोंकोंसे अलग-अलग होकर बह जाते हैं, इसी प्रकार हम सब संसारमें स्थाई बनकर नहीं आए हैं; बल्कि यह हमारी यात्रामें एक पड़ाव है। इस पड़ावमें एक जगह इकट्ठे होनेवाले माता, पिता, पुत्र, कान्ता, सुहृद, भगिनी इत्यादिमें मन मत फँसाओ और इस अमूल्य नर-तनको नष्ट मत करो जो मोक्षका साधन है, क्योंकि हम सब अपनी-अपनी यात्रापर जानेवाले प्राणी हैं जो दैवयोगसे कुछ कालके लिए एक जगह इकट्ठे हो गए हैं।'

जैसे वृक्षातळीं पांथिक । एकत्र मिळते लक्ष एक ।
तैसे पुत्र दारा आप्त लोक । सर्व ही क्षणिक संगमू ।।
उभय नदी प्रवाहेंशीं । काष्ठें मिनलीं संगती जैशीं ।
सोयरीं सर्व जाण तैशीं । हेलाव्यासारशीं फांकती ।।

तुलसीदासने भी इसी भावको यों प्रकट किया है :—

वे कहते हैं कि 'हे मूर्ख जीव ! जाग । संसाररूपी रात्रिमें अपनेको मुक्त करनेका उपाय सोच । अपने शरीर और कुटुम्बियोंके स्नेहमें भूला न पडा रह । इनका संबंध बादलोमें बिजलीके समान क्षणिक है ।'

जागु जागु जीव जड़ । जोहै जग-जामिनी ।
देह-गेह नेह जानि जैसे घन-दामिनी ।।

कबीरदासने इस भावको इस तरह प्रदर्शित किया है :—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुषकी जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ।।
ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर-फूल ।
दिन दसके व्योहारमें, झूठे रंग न भूल ।।
सेवर सुवना सेइया, दुइ ढेंढ़ीको आस ।
ढेंढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास ।।

नाथमहाराजने जीवको भगवत-आराधनाके लिए जो चेतावनी दी है उसका भी रसास्वादन कीजिए । नाथमहाराज कहते हैं :—

"इस ऐहिक सुखमें तू क्यों भूल रहा है ? धन और यौवनके ज़ोरमें तूने जगन्नियंताको भुला दिया है । परन्तु जिस समय अंतकालमें तेरे पाँचों प्राण निकल रहे होंगे तो तेरी इस विथामें तेरा धन-ऐश्वर्य क्या तेरे काम आएँगे ? जिस समय यमलोकमें तुझे बहुत-सी यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी उस समय तेरी कौन रक्षा करेगा ? तेरी अति प्रेमपात्र कामिनी जिसे तू कान्ता शब्दसे संबोधित करता रहा है वह भी तुम्हारे वियोगमे इतना शोक न करेगी जितना अपने केश मुड़वानेके लिए दुःख प्रकट करेगी । माँ-बाप, भाई, नातेदार सब तबतकके साथी है जबतक शरीरमे प्राण हैं । इसलिए हे जीव ! संतकी शरणमें जा, जहाँ जानेसे तू जन्म-मरणके चक्रसे छूट सकेगा

अभंग

धन, मान, बळें नाठवीसी देवा ।
मरण-काळीं बा, कोण आहे ॥
यमाचे यमदंड, बैसतील लाथा । तेव्हां तुज रक्षीता होईल कोण ॥
सर्वस्व कामीनी, म्हणवीती कांता । तेही केश देतां रडतसे
माय बाप बंधु, सोयरे तोंवरी । इंद्रियें जोंवरी वाहतातो ॥
एका जनार्दनीं, संतासि शरण । तुज जन्म-मरण, नाहीं नाहीं ॥

इस भावको कबीरने यों प्रकट किया है:—

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहूका नाहिं ।
घरकी नारीको कहे, तनकी नारी नाहिं ।

अरे ! इस शरीरकी कितनी खबरदारी ! इस देहको सुशोभित करनेके लिए नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे उसे सजाते हैं । मेरा चेहरा, मेरे नेत्र, मेरे सुन्दर अङ्ग समझकर इनका कितना बनाव-शृङ्गार ! परन्तु वास्तवमें स्थिति बिल्कुल विपरीत है । जब इस हाड-मासके पिंजरेसे जीवरूपी हंस उड़ जायगा तो इसको कोई कौडीको न पूछेगा । यह देह तृणोके गठ्ठेके समान है । प्राण निकलनेके बाद यही देह त्याज्य, अस्पर्श्य और भयानक लगती है और चिताकी अग्निमें जलकर मिट्टीमें मिट्टी मिल जाती है ! जिनको यह देह पहले प्राणसे भी अधिक प्रिय थी और जो इस शरीरके माता-पिता हैं वे भी कहने लगते हैं कि चलो, अब ले चलो ! नही तो बदबू आने लगेगी !! मुंहपर कपड़ा डाल दो; नहीं तो बच्चे डर जायँगे । इतनाही नही वरन् देह-सौन्दर्यपर आठो पहर अपना तन, मन, धन अर्पण करनेवाली स्त्री भी स्वप्नमें देखकर 'भूत भूत' करके चीखती और डरने लगती है । जो इतना क्षणभंगुर शरीर है उससे इतनी ममता ! यदि यह शरीर तुम्हारा होता तो तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कैसे अलग हो जाता ? इसलिए देहबुद्धि धारण करनेवाले जीव ! इस शरीरसे प्रीति छोड़ दे और सत्कर्म कर । यह शरीर धर्मसाधनके ही लिए तुझे दिया गया है ।

अभंग

माझें माझें म्हणुनी, करितोसी कष्ट । उडाला हंस राहिलें फळकट ।।
तृणाचें बुजवण, तैसी देहस्थिति । चितान्नी जळोनि मीळे मातीसी माती ।।
देहाचीं जनकें माता आणि पिता । गेला गेला म्हणती तो हे असता ।।
अष्टौप्रहर भोगी देहें गेहीं वित्त । सेजेची भार्या पळाली म्हणे भूत भूत ।।
यापरी जाणोनी सांडी देहप्रीती । एका जनार्दनीं राहे विदेह स्थिति ।।

इसी भावको तुलसीदासने यो स्पष्ट किया है :—

"अरे मन ! समय निकल जानेपर तुझे पछताना पड़ेगा । इसलिए कठिनतासे प्राप्त होनेवाले मनुष्य-शरीरको पाकर भगवच्चरणारविन्दोका भजन, कर्म, वचन और हृदयसे कर। सहस्रबाहु और रावण-जैसे महाप्रतापी राजा भी बलवान् कालसे अछूते नही बचे; उन्हे भी कराल कालका ग्रास बनना पड़ा जिन्होंने 'हम हम' करते हुए धन और धाम सँभाल-सँभालकर रखे थे, वे भी अन्तसमय यहाँसे खाली हाथही चले गए । पुत्र, स्त्री आदिको मतलबी यार समझ । इन सबसे प्रेम न बढा । क्योंकि ये तेरे सदाके साथी नहीं हैं, न पहले थे और न आगे होगे । अरे अधम ! जब ये सब तुझे अन्तसमय छोड़ही देंगे तो तू इन्हे अभीसे क्यों नही छोड़ देता ?"

मन पछितै है अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु हीते ।। १ ।।
सहस बाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बलीते ।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ।। २ ।।
सुत बनतादि जानि स्वारथ-रत, न करू नेह सबही ते ।
अंतहुँ तोहि तजैंगे पामर ! तू न तजै अबही ते ।। ३ ।।

नानकने भी इसी आशयका एक पद लिखा है :—

जगतमें झूठी देखी प्रीत ।
अपने ही सुखसों सब लागे, क्या दारा क्या मीत ।।
मेरो मेरो सभी कहत है, हितसों बाँध्यो चीत ।
अंतकाल संगी नहिं कोऊ, यह अचरजकी रीत ।।

मन मूरख अजहूँ नहिं समुझत सिख दै हार्‌यो नीत ।
'नानक' भव-जल पार परै जो गावै प्रभुके गीत ॥

अहा ! मोह भी कितना बली है ! बाल्यावस्था गई, जवानीकी शक्ति गई; परन्तु इस बुढ़ापेमें भी विषय-वासना न गई । भयंकर काल मुँह बाया हुआ है और अब इस विश्वभक्षक कालके जबड़ोमें जानेके पूर्वचिह्न दिखाई दे रहे हैं ।

आँखोसे कलेवा भी दिखाई नही दे रहा है, कान बिल्कुल जवाब दे चुके है, शरीर सूखकर काँटा हो गया है, और उसपर झुर्रियाँ पड़ गई है, गर्दन हिलने लगी । दाँत गिर गए है, ठोड़ी नाकके निकट आ गई है; कानके बाल सफ़ेद हो गए है, परन्तु अब भी इसका विचार नही करता कि मै कौन हूँ ? मेरा कर्तव्य क्या है ? अब भी तू मिथ्या मोह और विषयोमें फँसा हुआ सुख मान रहा है । तेरी प्रिय स्त्री भी तेरी वासनाओको तृप्त करते करते थक गई है और अपमान करती है । वेश्या धन लेकर भी तेरा अपमान करती है । तू अपनी संतानके स्नेहमें जल रहा है । अब तू सब तरहसे उदास दिखाई देता है । तेरा बल, धन और स्त्रीका यौवन सब क्षीण हो चुका है । तुझसे किसीको प्रेम नहीं है । अब भी मोह-ममता व विषयासक्तिको छोड़ दे और रामनामका स्मरण कर, जिससे तेरा कल्याण हो; नही तो जीवित ही नष्ट हो जायगा । बाल्यावस्था व यौवनावस्था गये सो गये । अब बुढ़ापा जाकर आनेवाला नहीं । इसलिए भगवत्-स्मरण कर ।

अभंग

डोळां न दिसे न्याहरी । दृष्टी झाली पाठमोरी ॥ १ ॥
अजुन काय सारे मोह । मिथ्या विषयाचा संदेह ॥ २ ॥
कानीं बैसतें तें टाळें । आलें प्रेमाचें उटाळें ॥ ३ ॥
आंग वाळलें कांचरी । चंद्रबिंब ढळलें शिरीं ॥ ४ ॥
नाना विषय करी न सुखी । प्रणता स्त्री प्रत्यक्ष थकी ॥ ५ ॥
वेश्या धन घेउनि मोला । स्त्री वार्धक्यीं देत टोला ॥ ६ ॥
अग्नि अवचटल्या पोळी । पुत्र नाना स्नेहें जाळी ॥ ७ ॥

मान कापुनी विषय वारी । मरण चढलेंसे शिरीं ॥ ८ ॥
बळ प्रौढी स्त्रीनें धन । क्षीण क्षाला उदासीन ॥ ९ ॥
पाठि बैसविली आवडी । शेखीं नागउनी सोडी ॥ १० ॥
पुरुष वार्धक्यीं नावडे । नेल्या, कानकेसरडे ॥ ११ ॥
दांत पडोनी सांगे गोष्टी । नाका लागते हनुवटी ॥ १२ ॥
मोह ममता सांडी काम । सदा जपे रामनाम ॥ १३ ॥
रामनामीं होईल हित । येरहवीं बुडालें जीवित ॥ १४ ॥
एका जनार्दन पुरा । बाल तारुण्य न निघे जरा ॥ १५ ॥

यह अभंग चर्पटपंजरीका भाषातरही प्रतीत होता है । तुलसीदासने विनयपत्रिकामें इसी आशयको इन शब्दोंमे व्यक्त किया है :—

" जवानी चढतेही तू कामिनी-प्रेममें फँस गया । स्त्रीकी हवा लगतेही तुझे मस्ती चढ़ आई, आँखे फूट गई । इसीसे तूने धर्ममर्यादाको लात मार दी, गर्भवासके समयका पश्चात्ताप भूल गया और लगा फिर पाप कमाने । जो शरीर कीड़ों, राख, विष्ठा, आदिका परिणाम है उसके लिए सारे संसारका शत्रु बन बैठा । दूसरेकी स्त्री, दूसरेका धन, दूसरोसे द्रोह, यही संसारमें दिनदूना रात चौगुना बढ़ता गया ।"

जौवन जुवती सँग रँग रात्यो । तब तू महा मोह मद मात्यो ॥
ताते तजी धरम मरजादा । बिसरे तब सब प्रथम बिषादा ॥
कृमि भस्म-बिट-परिनाम तनु तेहि लागि जग बैरी भयो ॥
परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो ॥

" देखते देखते बुढ़ापा आ पहुँचा जिसे तूने स्वप्नमें भी नहीं बुलाया था । शरीर जीर्ण हो गया है । बुढ़ापेके कारण रोग और शूल सता रहे हैं । सिर हिल रहा है । इन्द्रियोकी शक्ति चली गई है । तेरा बोलना किसीको अच्छा नहीं लगता । घरकी रखवाली करनेवाला कुत्तातक तेरा मान नही करता । न तुझे कोई खाना देता है, न पानी । इतनी सब दुर्दशा होनेपर भी तुझे वैराग्य नहीं आता । नित्य तृष्णामें फँसता चला जा रहा है । "

सो प्रगट तनु जर जर जरा बस, व्याधि सूल सतावई ।
सिर-कंप इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई ।।
गृह पालहू तें अति निरादर खान-पान न पावई ।
ऐसिहु दशा न बिराग तू तृस्ना तरंग बढ़ावई ।।

आज भी विचार कर विषयोंको छोड़ दे और भक्तोंको आनन्द देनेवाले भगवान् रामचन्द्रजीका भजन कर । वे कठिनाइयोंसे पार करने योग्य संसार-सागरके लिए नावरूप है । चक्रसुदर्शन धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान्का भजन कर ।

अजहुँ बिचार बिकार तजि भज राम जन सुखदायकं ।
भव सिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुरनायकं ।।

एकनाथने अपने अभंगमें वृद्धावस्थाके लक्षणोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है । ज़िस भावको एकनाथने ' दृष्टी झाली पाठमोरी, कानी बैसलें तें टाळे, आंग वाळले काचरी, दात पडोनी, नाका लागते हनुवटी ।'से प्रगट किया हैं उसे तुलसीदासने ' सो प्रगट तनु जरजर जराबस, सिर-कंप इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत 'से व्यक्त किया है । जो भाव एकनाथने ' स्त्री वार्धक्यी देत टोला । 'से व्यक्त किया है उसे तुलसीदासने ' गृह पालहू तें अति निरादर 'से प्रगट किया है । अन्तमें एकनाथने मनुष्यमात्रको यह चेतावनी दी है कि भगवद् भजन किया जाय । यहाँ जिस भावको एकनाथने ' मोह ममता साडी काम । सदा जपे रामनाम ।। रामनामीं होईल हित । येऱ्हवी बुडालें जीवित ।'से प्रगट किया है उसे तुलसीदासने ' ऐसिहु दशा न बिराग तू तृस्नातरग बढ़ावई ।। अजहूं बिचार बिकार तजि भज राम जन सुखदायकं ।' से व्यक्त किया है ।

संत-महिमा

एकनाथने संत-लक्षण और संत-महिमाका वर्णन कई स्थलोपर किया है । बालकाण्डमें संतोंकी वंदनामें संतोंकी महिमा बताई है । श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठजीसे ब्रह्म प्राप्त करनेके उपाय पूछे । उस समय वसिष्ठजीने सत्संगकी महिमाका वर्णन किया है । राजा जनकको जब विश्वामित्रकी भेंटका सौभाग्य प्राप्त हुआ तो जनकने सत्संगकी महिमा बताई है । इसी

प्रकार भरतजी, त्रिजटा, बिभीषण और शिवजीने संत-महिमाका वर्णन किया है। एकनाथने अपनी भागवतमें ३५० ओवियोंमें संतोके लक्षण बताए है।

तुलसीदासने भी सतोंकी वंदनाके समय सतोंके लक्षणका वर्णन किया है। अरण्यकाण्डम नारदने रामचन्द्रजीसे सतोंके लक्षणके विषयमें प्रश्न किया है और श्रीरामचन्द्रजीने श्रीमुखसे संतोंके लक्षण बतलाए है। सुन्दरकाण्डमें लका नाम्नी राक्षसीने सत-महिमा बताई है। उत्तरकाण्डमें फिर रामचन्द्रजीने भरतसे और काकभुशुण्डिने गरुडसे संतोके लक्षण व महिमा वर्णन की है।

नाथने ग्रन्थके आरम्भमें जो मंगलाचरण लिखे है उनमें संतोंका भी महात्म्य वर्णन किया है। वे लिखते है :—' अब मै सत-सज्जनोको नमस्कार करता हूँ, जो दुखी मनुष्यरूपी चातकोके दैविक, दैहिक और आध्यात्मिक तीनो प्रकारके दुखोको नाश करनेके लिए मेघके तुल्य है जिनकी सगति प्राप्त होनेसे सब कर्मोसे निवृत्ति और धर्म व शान्ति प्राप्त होती है। भक्तलोग परमार्थ-लाभ करते है। सत्सगसे परमार्थरूपी गौके स्तनोंमें दूध भर आता है और आनन्दका फल सदा फलता रहता है। सत्सगसे जो स्वानन्दरूपी रसाल फल प्राप्त होता है उससे जन्म-मरणका बन्धन टूट जाता है और आदि, मध्य व अन्तका कोई झगड़ा शेष नही रहता। मै एक अबोध बालकके समान सत्संगकी महिमा वर्णन करनेमें अशक्य हूँ। बिना सत्संगके ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव सत-समागममे हरिकथा ध्यानसे सुननी चाहिए।

आतां वंदूं ते संत-सज्जन। जे आर्त चातकां चिद्घन।
त्रिविध तापा उपशमन। जे निज जीवन साधका॥ १४॥
ज्यांचो सहज जाल्या संगती। सकळ कर्मां होय निवृत्ती।
स्वधर्म स्वच्छान्ती येती। भावार्थें प्राप्ती परमार्था॥ १५॥
सत्संगाचे निजमेळीं। परमार्थ जाय पाल्हाळीं।
लगडोनि ये स्वानंद-फळीं। सर्वकाळीं सफळित॥ १६॥
बीजत्वचा न फेडिजे देंठु। आदि मध्य नाकळे शेवटु।
स्वानंद रसाळ फल घोटु। अनुभव स्पष्ट सत्संगें॥ १७॥

ऐसिया संताचें महिमान । आकळे ऐसें कैचें ज्ञान ।
बालत्वें बोलिलों तें न्यून । द्यावें अवधान कथेसी ॥ १८ ॥

(बालकाण्ड अ. १)

तुलसीदासने ग्रन्थके आरम्भमे संतोकी वंदना यों की है :—

"सब गुणोकी खान ऐसे सज्जनोंके समाजको मीठी वाणीसे और बड़े प्रेमसे प्रणाम करता हूँ। साधु आप दुःख सहकर पराये दोषोंको ढँकता है। वह संसारमे वंदनीय है और प्रशंसाके योग्य है। बिना सत्संगके ज्ञान नही होता और रघुनाथजीकी कृपाके बिना सत्संग मिल नही सकता। सत्सग आनन्द तथा मगलरूपी वृक्षकी जड़ है और सब दान, यज्ञ, तप आदि साधन उसके फूल है और सिद्धि फल है। तुलसीदासजी कहते है कि 'मै सतोको नमस्कार करता हूँ, जिनका चित्त समान होता है, जो सबका कल्याण करते है। जिस प्रकार अंजलिमे रखे हुए फूल दोनो हाथोको सम सुगध देते है उसी प्रकार संत लोग अच्छे-बुरेका विचार न करते हुए सबका कल्याण ही करते है।"

संतजन—जिनका सरल चित्त है—ससारके हित करनेवाले है। मेरे स्वभाव व स्नेहको जानकर मुझ बालककी विनति सुन कृपा करके श्रीरामचन्द्रजीके चरणोमे प्रीति दे।

सुजन समाज सकल गुण खानी । करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥ १ ॥
जो सहि दुःख परछिद्र दुरावा । वंदनीय जेहि जगयश पावा ॥ २ ॥
बिनु सतसंग विवेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥ ३ ॥
सतसंगति मुद-मंगल-मूला । सोई फल-सिधि सब साधन फूला ॥ ४ ॥

वंदौ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोय
अंजलिगत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोय ॥ १ ॥
संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाव सनेहु ॥
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरण रति देहु ॥ २ ॥

एकनाथकी १५ वी ओवीमें जो भाव वर्णन किया गया है उसे तुलसीदासने चौथी चौपाईमें प्रदर्शित किया है। फिर एकनाथने "बालत्वें

बोलितों ते न्यून।" से जिस भावको स्पष्ट किया है उसे तुलसीने "बाल-विनय सुनि करि कृपा।" से प्रगट किया है।

जिस भावको तुलसीदासने 'अंजलिगति शुभ सुमन जिमि सम सुगध कर दोय।' से व्यक्त किया है उसे ज्ञानेश्वरने नीचेकी ओवीमें बड़ी सुन्दरतासे प्रकट किया है :—जिस प्रकार कमलकी कली खिलनेके बाद अपने सौरभको अपने पास नही रखती बल्कि गरीब और अमीर सबको आनन्दसे तृप्त करती है उसी प्रकार सत भी दूसरोका कल्याण करते है।

जैसी-कमळ-कळिका जालेपणें।
हृदयींचिया मकरंदातें राखों नेणे।
दे राया-रंका पारणें। आमोदाचें॥

श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठजीसे ब्रह्म-प्राप्तिके उपाय पूछे। श्रीरामचन्द्रजी कहते है कि 'यद्यपि मुझे ब्रह्म-प्राप्तिका अधिकार नही तथापि आप महा पुरुषार्थी संत है और संतोका यह प्रण है कि वे दीनोंका उद्धार करते है। जिस प्रकार चन्दनके साथ-से खैर और धामोडके वृक्ष चंदनके समान हो जाते है उसी प्रकार सतोके साथमे रहनेसे दीनोको ब्रह्मप्राप्ति हो सकती है।'

मज नसेल अधिकार। तरी तुम्हीं संत सधर।
सत्संतीं दीनोद्धार। हें ब्रीद साचार संतांचें॥ ९३॥
चंदनाचे संगतीं। खैर धामोडे चंदन होती।
तेंवि संतांचे संगतीं। ब्रह्मप्राप्ती दीनासी॥ ९४॥

बालकाण्ड अ० ८

एकनाथने युद्धकाण्डमे संतोके लिए एक बडी सुन्दर उपमा दी है। वे कहते है कि 'पारसको तोड़नेके लिए घन ज़ोर-ज़ोरसे प्रहार करता है; परन्तु पारस उसे तत्क्षण सुवर्णका बना देता है। चंदनके संसर्गसे खैर, धामोड, वेहकली, ठाकली, पांगर इत्यादि वृक्ष चंदनसे सुवासित हो जाते है। इतना ही नही इसमे एक अलौकिक गुण और है। जो चदनके वृक्षको काटता है वह उसे अधिक सुगन्धित कर देता है। जलानेपर उससे भी

अधिक सुगंध देता है। इसी प्रकार सज्जनोंके लक्षण होते हैं। कपट और द्वेष करनेवालोंके साथ भी सज्जन समभावसे वर्तते है।'

परिस फोडावया जाण। सबळबळें हाणितां घण।
त्यासी करितां सुवर्ण। न लगे क्षण तत्त्वतां ॥ १०३ ॥
खैर धामोडे समग्र। वेहकळी ठाकळी अत्युग्र
आदि करोनि पांगर। जाले समग्र चंदन ॥ १०६ ॥
आणिक गुण अलोकिक। जो छेदावया आला देख।
त्यासी परिमळ अधिक। जाळी त्या देख तयाहोनी ॥ १०७ ॥
तेंवि सज्जनाचें लक्षण। छळें द्वेषभावें पूर्ण।
जो आला त्यापासीं जाण। त्यासी समाधान सारिखेंचि ॥ १०९ ॥

जिस समय हनुमानजीने काशीसे लिंग लाकर इसकी स्थापना सेतुबंध रामेश्वरमे की उस समय शिवजीने सत्संगकी महिमाका वर्णन किया है :—
"मनुष्य जिस संगतिमें रहता है उसकी छाप उसपर पड़ती है। उसका निजका गुण छिप जाता है और वह सगतिका गुण प्राप्त कर लेता है। यदि कस्तूरीके साथ रखकर प्याज़का पौधा लगाया जाय तो कस्तूरीकी सुगध छिप जाती है और प्याज़की दुर्गन्ध आने लगती है अथवा कुत्तेकी खोपरीमें गेहूँ बोए जायँ तो लहसन पैदा होता है। इसी प्रकार दुष्ट मनुष्योकी संगतिमें पड़कर मनुष्य अपने गुणोको खो देता है और सगतिका दुर्गुण ग्रहण कर लेता है। यही हाल सत्सगतिका है। नीच अपने दुर्गुणोंको छोड़कर अच्छे गुण ले लेता है। चन्दनके साथमे रहकर घुरका वृक्ष चन्दनसे सुवासित हो जाता है। इसलिए यदि कोई मनसे, वाणीसे अथवा कर्मसे सत्संगति छोड़कर दुष्ट सगतिमें पड़ जाता है तो नरकको प्राप्त होता है।"

ऐक संगाचें महिमान। ज्याची सगती धडे पूर्ण।
तरी त्याचेंही घेऊन उठे चिन्ह। अपुला निज गुण आच्छादी ॥१७९॥
आनें करून कस्तूरीचें। रोप लाविलें पलांडूचें।
सुवास आच्छादून साचें। दुर्गंधीचें बळ वाढे ॥ १८२ ॥
श्वानखापरी माजीं देख। गोधूम पेरितां सुरेख।
शुद्धत्व हरपे येकायेक। अशेष होत लसुणची ॥ १८३ ॥

तेंवि दुर्जनाच्या संगें जाण। बुडोनि आपला सद्गुण।
त्या लागे असद्गुण। सदाचारी जाण प्रवर्ते॥ १८४॥
तैसीच सत्संगाची स्थिति। नीच पावती महंती।
घुरे ते चंदन होती। जाण संगतीं चंदनाचें॥ १८७॥
म्हणोनि मनसा वाचा कर्मणा। सत्संगती सांडोनि जाण।
असत्संगती करितां पूर्ण। नरक दारुण अगीं वाजे॥ १८०॥

तुलसीदासजीने संतोकी महिमाका यो वर्णन किया है। वे कहते है कि 'बुरी संगतिमें पड़नेसे हानि और अच्छी सगतिमे पड़नेसे लाभ होता है। यह बात सबको भलीभाँति विदितही है और वेदमें भी बताई गई है। मिट्टी हवाके साथ आकाशमें चढ़ जाती; परन्तु नीच जलके साथ मिलनेसे कीचमें मिल जाती है। संतोके घरके तोता-मैना रामनाम लेते हैं और दुष्टोंके घरके तोता-मैना गालियाँ देते है। सन्त चन्दनके वृक्षके समान है और दुष्ट कुल्हाडीके समान। कुल्हाडी चन्दनके वृक्षको काटती है परन्तु चन्दन उसे अपने गुणसे सुवासित कर देता है।'

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेदविदित सब काहू।
गगन चढइ रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जलसंगा।
साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमरहिं रामु देहिं गनिगारी॥
संत असंतन कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

एकनाथ और तुलसीदास दोनोंने सत्सगकी प्रशंसा की है और दुष्ट सगकी निन्दा की है। दोनोके भावों और विचारोंकी साम्यताके साथ साथ दोनोंकी उपमाओंमें भी काफी समानता पाई जाती है। एकनाथने जहाँ "परिस फोडावया जाण। सबळबळें हाणितां घण। त्यासि करितां सुवर्ण।" लिखा है वहाँ तुलसीदासने "सठ सुधरहि सत सगत पाई। पारस परसि कुघात सुहाई।"का प्रयोग किया है। इसी प्रकार जहाँ एकनाथने "जो छेदावया आला देख। त्यासी परिमळ अधिक। जाळी त्या देख तयाहोनी।" लिखा है वहाँ तुलसीदासने "संत असंतन कै असि करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी। काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगन्ध बसाई॥"का प्रयोग किया है।

भावार्थ रामायणकी तरह एकनाथने अपनी भागवतमें भी संतोंके लक्षण वर्णन किए है। उद्धवने श्रीकृष्णसे यह प्रश्न किया कि साधुओंके क्या लक्षण हैं? तो श्रीकृष्णने पाँच श्लोकोंमें इसका उत्तर दिया। इसीका निरूपण नाथने ३५० ओवियोमें किया है। नाथ लिखते हैं कि 'परोपकार सन्तोका सहज सुभाव होता है। वे वृक्षके समान हैं जो अपने पत्तों, फूल-फल, छाल, जड़ और छायासे सबका उपकार करते है।'

पत्र पुष्प छाया फळ। त्वचा काष्ठ समूळ।
वृक्ष सर्वांगें सफळ। सर्वांसी केवळ उपकारी॥

तुलसीदास इसी भावका वर्णन यों करते हैं:—

संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी सबका जन्म दूसरोंके कल्याणके लिए है। इतनाही नहीं संत, आमके वृक्षके समान है जो दूसरोंके लिए फूलने और फलते हैं। इन्हें जो पत्थर मारते हैं उन्हें वे फल देते हैं।

संत बिटप, सरिता, गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हकी करनी।
तुलसी संत सुअंब तरु, फूल फलहिं परहेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत।

"संतका हृदय नवनीतके समान दयासे पिघल जाता है। उसकी अनाथोंपर अत्यन्त करुणा होती है और वह दीन-दुखियोंके संकट दूर करनेके लिए तन-मन-धन अर्पण कर देता है।"

दयार्णवें द्रवली दृष्टी। तन-मन-धन वेंचूनि गांठी।
अनाथावरी करुणा मोठी। उद्धरी संकटीं हीनातें॥

तुलसीदासजीने भी संतोके हृदयको नवनीतके समान बताया है। नवनीत तो अपनी उष्णतासे पिघलता है; परन्तु संत दूसरोंके दुखसेही पिघल जाते हैं:—

संत-हृदय नवनीत-समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

साधु-संतोंके प्रति एकनाथकी इतनी पूज्य बुद्धि थी कि उन्होंने एक जगह लिखा है कि जिस समय संतलोग हरिकीर्तनके लिए जायँ तो उनके जूतोंको लेकर चलनेसे मनुष्य सहजही संसार-सागरको पार कर सकता है। संतोंके पदत्राण भक्तोंको तारनेके लिए जहाज हैं। संतोंकी चरणरज भक्तोंके आभूषण है। इसीलिए एकनाथमहाराजने अपनेको संतोंकी पादुका कहा है।

संत जाती हरिकीर्तना। त्यांचे वाहीन मोचे वहाणा॥
भवांसिधूचें तारूं। तेणें उतरूं पैलपारू॥
जन्मोजन्मींचें भूषण। संत-चरणींचें रजन॥
संत-चरणींच्या पादुका। जाला जनार्दनीं एका॥

तुलसीदासने इसी भावको यों प्रदर्शित किया है:—

तुलसी जाके वदनते, धोखेउ निकसत राम॥
ताके पगकी पगतरी, मेरे तनुको चाम॥

एकनाथ संतोंके जूतोंको लेकर चलना अपने लिए भक्तिका भूषण समझते हैं तो तुलसीदास धोखेसे भी रामनाम कहनेवालेके लिए अपने शरीरकी चमड़ीतक देनेके लिए उद्यत हो जाते हैं।

नाम-महिमा

एकनाथने अरण्य, सुन्दर, किष्किन्धा युद्ध और उत्तरकाण्डमें स्थान-स्थानपर रामनामकी महिमाका बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। भावार्थ रामायणमें उत्तरकाण्डमें शिवजीने पार्वतीको राम-नामकी महिमा बताई है। शिवजी कहते हैं कि 'हे पार्वती! कलियुगमें मोक्षका मुख्य साधन श्रीराम-नाम है। नामके प्रभावसे कुटनी तर गई। पिंगलाको वैकुण्ठ मिला। नामसे यह पृथ्वी पवित्र है और नामसे ही तीनों लोकोंमें आनन्द है। डाकू वाल्मीकि नाम-स्मरणसे कलिकालको जीत सका। नामसे मुक्ति प्राप्त होती है और सारे दोष नाश हो जाते हैं।'

कलियुगीं मुख्य साधन। श्रीरामाचें नाम जाण।
पार्वतीप्रती मदनारी आपण। नाम-महिमा सांगतसे॥ ३२॥

नामें उद्धरिली कुंटीणी । नामें गणिका चढली विमानीं ।
नामें पावन हे अवनी । नामें त्रिभुवनीं आनंद ॥ ३७ ॥
नामें वाल्मीक चोरटा । कळिकाळें घेतां झटा ।
नामें मुक्तीच्या पिकल्या पेंठा । नामें देशवटा भवदोषा ॥ ३८ ॥
(उत्तरकाण्ड, अ० ४१)

तुलसीदासने भी रामनामकी महिमाका बालकाण्डमें विशेष वर्णन किया है। वे कहते हैं कि 'कलियुगमें राम-नाम इच्छित वस्तु देनेवाला है। रामनाम परलोकमें कल्याण करता है और इस लोकमें माता-पिताकी भाँति रक्षा करता है। कलियुगमें कर्म, भक्त तथा ज्ञानका कोई आश्रय नही है। केवल रामनामका एक भरोसा है। कलियुग कपटका घर कालनेमि राक्षस है और रामनाम उस कपटरूपी राक्षसको मारनेके लिए समर्थ हनुमानजी है।

रामनाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक-पितु-माता ।
नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू । रामनाम अवलंबन एकू ।
कालिनेमि कलिकपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ।

रामनामकी महिमा वर्णन करते हुए ३७ वी ओवीमें जो भाव एकनाथने प्रकट किए हैं उसे तुलसीदासने यों प्रकट किया है :—

अपर अजामिल गज गणिकाऊ । भए मुक्त हरिनाम प्रभाऊ ।
कहहुँ कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुण गाई ।

तुलसीदासने अन्य कुछ चौपाइयोंमें शिवजी, शुक-सनकादि, नारद, ध्रुव, हनुमानके रामनाम जपनेका प्रभाव बतलाया है और फिर अजामिल, गजेन्द्र और गणिकाके उदाहरण दिए हैं और यहाँतक कह डाला कि स्वयं राम, रामनामका यश वर्णन करनेमे असमर्थ है।

उत्तरकाण्डमे भी तुलसीदासने रामनामका महात्म्य लिखा है, वे लिखते हैं :—

'हे मूर्ख मन ! श्रीरामजीके भजन करनेसे किसने गति नही पाई है ? श्रीरामजी पातकी मनुष्योंको पवित्र करनेवाले है। उन्हीं श्रीरामजीको

क्यों नही भजता? गणिका, अजामिल, गिद्ध, व्याध, गज आदि खल भगवानने तार दिए है और भी खल, आभीर, यवन, किरात, श्वपच आदि जो अत्यन्त पापी थे, वे भी एक बार श्रीरामजीके नामको स्मरण करनेसे पवित्र हो गए हैं और होते है। ऐसे श्रीरामजीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

पाई न गति केहि पतित पावन राम भजु सुनु सठ-मना।
गनिका अजामिल ग्रध्र व्याध गजादि-खल तारेउ घना॥
आभीर यवन किरात खल स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारिक तेऽपि पावन होत राम नमामि ते॥

एकनाथने भी गरुडजीका एक उदाहरण दिया है। वे कहते हैं कि 'श्रीरामनाम धारण करनेके कारण गरुडजीने तीनों लोकको जीत लिया और इसी नामके प्रतापसे महादेवजीके त्रिशूलको निगल लिया। इसी प्रकार गरुडजीने महा दुर्धर विष्णुके चक्रको निगल लिया, जिससे उन्होंने राक्षसोंका नाश किया था।'

त्रिशूळ गिळावयाची शक्ती। हे कैंची गरूडाप्रती।
सदाशिव पाहे निश्चिती। हृदयस्थिति श्रीरामनाम॥ २६॥
विष्णुचक्र महामार। धायें निर्दाळित असुर।
चक्र त्रैलोकीं दुर्धर। गरुडें तें चक्र गट केलें॥ ३७॥

(अरण्यकाण्ड अ० ७)

३८ वी ओवीमें एकनाथने वाल्मीकिका उदाहरण दिया है कि 'उन्हे नाम-स्मरणद्वारा यश प्राप्त हुआ।' तुलसीदासजीने भी बतलाया है कि 'मरा मरा' जपनेपर वाल्मीकि सिद्ध बन गए :—

जान आदिकवि नाम प्रतापू, भयउ सिद्ध कर उलटा जापू॥

गोविद नाम लेनेसे जो पुण्य होता है उसके बराबर कोई पुण्य नही। ग्रहणके समय करोड़ अलंकृत गौओंको दान देनेसे जो पुण्य होता है वह भी रामनामके फलसे कम है। सुवर्ण सीग व चाँदीके खुरवाली बछड़ोंके साथ करोड़ गौओंका दान भी नाम-महिमासे कम है, अथवा दस हज़ार वर्षतक त्रिवेणी

तीरपर निवास करनेसे जो अगणित फल प्राप्त होता है वह नाम-स्मरणके बराबर नहीं है। एक अयुत सागोपांग महायज्ञ अथवा मेरु पर्वतके बराबर सोनेके दानके फलसे नाम-स्मरणका फल अधिक होता है। यदि इन सब पुण्योंको एक जगह रखा जाय और दूसरी ओर नाम-स्मरण तो सब पुण्य मिलकर नाम-स्मरणके फलकी तुलना नही कर सकते। इसलिए सब देवोंके मुकुटमणि, शिवजीने अपने हृदयमें रामनामको धारण किया और राम-नामरूपी संजीवनीके उपासक बन गए।

गोविंद नामाच्या तुळणेसी। न येती पुण्याचिया रासी।
ग्रहणकाळीं कोटि धेनूसी। जरी दिधल्या शृंगारून॥ ३९॥
सुवर्ण शृंगी रौप्य खुरी। सवत्सा आभरणेंसी कोटीवरी।
दिधल्या फळ नामा बरोबरी। न ये निर्धारीं तुळितांही॥ ४०॥
अथवा दशसहस्र वर्षेपर्यंत। त्रिवेणीतीर आश्रयोनि तेथ।
राहिल्या पुण्य अगणित। नाम तुळणेसीं पै न ये॥ ४१॥
एक अयुत महायज्ञ। सांगोपांग करोनि जाण।
अथवा मेरूइतकें सुवर्णदान। दिधल्या नाम-महिमान अधिक॥ ४२॥
इतुकीं पुण्यें एकीकडे। घालितां नामाच्या पारडे।
तुळणेसी न पावें चंद्रचूडें। म्हणोनि हृदयीं धरियेलें॥ ४३॥
आधींच तो पिनाकपाणी। सकळ देवांचा मुकुटमणी।
तोही राहिला नामसंजीवनीं। उपासक होवोनि नामाचा॥४४॥

(उत्तरकाण्ड, अ० ८१)

जिस भावको एकनाथने ३९–४३ ओवियोंमे प्रदर्शित किया है उसको तुलसीदासने यों प्रकट किया है:—

"कल्पवृक्षकी सेवासे मन-इच्छित फल प्राप्त होता है। परन्तु कलियुगमे श्रीरामनामके जपसे ही कल्याण होता है। इसी रामनामके स्मरणसे मैं भाँगके पौधेसे तुलसीका पवित्र पौधा बन गया हूँ।"

रामनामको कल्प-तरु, कलि-कल्याणनिवास।
जो सुमिरत भये भाँगतें, तुलसी तुलसीदास॥

एकनाथने ४३ वी ओवीमें जो उपमा दी है वैसीही उपमा तुलसीदासने संत-समागमके सम्बन्धमें दी है, जहाँ लंका नामक राक्षसी हनुमानजीसे कहती है: —

"हे तात! स्वर्ग और अपवर्गके सब सुखोंको मिलकर एक पलड़ेमें रखा जाय तो वह सब मिलकर भी एक क्षणके सत्संगसे जो सुख मिलता है उसकी बराबरी नही कर सकते।"

तात स्वर्ग-अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ।

एकनाथ कहते है कि 'जन्म-मरणके बन्धनसे छूटनेका 'श्रीरामनाम मुख्य साधन है । नाम परिपूर्ण परब्रह्म है।'

ऐसीया अनुभवेंसी जाण । श्रीरामनाम मुख्य साधन ।
नामें निरसे जन्म-मरण । नाम परिपूर्ण परब्रह्म ॥ ६८ ॥
(सुन्दरकाण्ड अ० ६)

एकनाथ नामको परिपूर्ण परब्रह्म बताते है तो तुलसीदास रामनामको ब्रह्म और रामसे भी बड़ा बतलाते है जिसे शतकोटि रामायणोंमेंसे लेकर शिवजीने अपने हृदयमें धारण किया: —

ब्रह्म रामतें नाम बड, बरदायिक बरदानि ।
राम-चरित शतकोटि महँ, लिय महेश जिय जान ॥

एकनाथ कहते है कि 'नाम लेनेके लिए न स्नानकी आवश्यकता है और न किसी विधिविधानकी। नामके लिए कोई बन्धन नही है। नाम तो पूर्ण परब्रह्म है। स्त्रियोंके लिये रामनाम-स्मरण भूषणका भी भूषण है। रामनाम सुहागका भी सुहाग है। नामसे स्त्री व शूद्र सभी पवित्र हैं। स्त्रियोका मंगल-सूत्र काली मणियाँ है तो पुरुषोंका मंगलसूत्र रामनाम है, जिसके टूटनेसे वैधव्य प्राप्त होता है।'

नामासी नाहीं स्नानबंधन । नाहीं नामापासीं बिधि-विधान ।
अबद्धनाम अतिपावन । नाम परिपूर्ण परब्रह्म ॥ ७० ॥

स्त्रियांसी रामनाम-स्मरण। तें भूषणाचें निज भूषण।
अहेवपणाचें अहेवपण। नामें पावन स्त्री-शूद्र ॥ ७५॥
स्त्रियांसी गळसरी कृष्णमणी। पुरुषा गळसरी नामस्मरणी।
ते तुटलिया रांडपणीं। काळ कर्मणी करावी॥ ७६॥

(सुन्दरकाण्ड अ० ६)

फिर एकनाथ कहते है कि 'उठते-बैठते, भोजन करते व सोते हरिका नाम पवित्र समझो' :—

आसनीं भोजनीं शयनीं जाण। नाम पावन हरीचें।

" आसन, ध्यानका परिश्रम न करते हुए जो रामराम कहता है वह करोड़ों जन्मोंके पापको धो डालता है और उसकी वाणी पवित्र होती है।"

आसन ध्यान परिश्रम। न करूनि म्हणे जो राम राम।
तेणें कोटिजन्मांचा हरे श्रम। उत्तमोत्तम ते वाणी॥

तुलसीदासने भी इस आशयको यो स्पष्ट किया है : —

वे कहते हैं कि 'भावसे अथवा कुभावसे अनख या आलससे भी जो राम-नाम लेता है उसका सब प्रकारसे कल्याण होता है।'

भाव कुभाव अनख आलसहू॥ राम कहत मंगल दिशि दशहू।

एकनाथने ऐसे मनुष्यको जिसको रामनाम प्रिय नही है महापापी बताया है। वह सब दोषोंका घर है। आकल्प वह नाशको प्राप्त होता है। रामनामका जो सम्मान नहीं करता उसकी बड़ी भारी भूल है। जीते हुए भी वह मरेके तुल्य है और स्पर्श करनेके योग्य नही है।

नाम नावडे जयासी। तो जाणावा पापराशी।
सकल दोष तयापासीं। क्षयो त्यासी आकल्प॥ १०३॥
रामनाम न माने जयासी। अर्थवाद म्हणे तयासी।
जिताचि प्रेतत्व त्यासी। स्पर्शो नये तयाला॥ १०४॥

(किष्किधाकाण्ड, अ० १३)

तुलसीदासने इसी प्रकारके भाव प्रकट किए हैं। वे कहते है कि 'जिन्होंने हरिकथा अपने कानोसे नही सुनी उनके कान सर्पके बिलके समान हैं। जिन्होंने अपने नेत्रोंसे सतोके दर्शन नही किए उनके नेत्र मोर-पंखके समान है। जिनके हृदयमें हरिभक्ति नही वे प्राणी जीवित होते हुए शवतुल्य है। जिसने अपनी जिह्वासे रामके गुणगान नही किए उनकी जीभ मेंढ़ककी जीभके समान है।'

जिन्ह हरिकथा सुनी नहीं काना। स्रवन रंध्र अहि-भवन समाना।
नयनन्हि संत-दरस नहिं देखा। लोचन मोर-पंख कर लेखा।
जिन्ह हरि-भगत-हृदय नहिं आनी। जीवत सब समान तेइ प्रानी।
जो नहिं करइ राम-गुन-गाना। जीहसो दादुरजोह-समाना।

एकनाथ कहते हैं कि 'जो मनुष्य अपने मुखसे रामनाम नही कहता उसका मुख चर्मकुण्ड है और जिह्वा चमड़ेका टुकडा है जिसपर असत्यरूपी काँटे जड़े हुए है। रामनाम न जपनेवाली वाणीको वे गलित कुष्ठमें ग्रस्त बताते हैं, जिससे असत्यरूपी कुष्ठका पानी बहता रहता है और निन्दाकी दुर्गध आती है। ऐसी वाणीमें अधर्मके कीड़े पडते है जो चारों ओर चुलबुलाते रहते है। ऐसी वाणी जिसके सामने आती है वह अपना मुँह फेर लेता है और नाक बन्द करके रामनाम कहने लगता है। छोटे-बड़े सब उसपर थूकते है।'

राम-नामेंवीण जे तोंड। तें जाणावें चर्मकुण्ड।
भीतरीं जिह्वा तें चाम-खण्ड। असत्य कांटेड कांटली॥
होकां हरिनामें विण वाणी। ते गलित कुष्ठें जाली कुष्ठिणी।
असत्य कुष्ठाचें गेलें पाणी। उठी पोहाणी निंदेची॥
ऐसिया वाचेसी रोकडे। पडती अधर्माचे किडे।
चुळबळती चहूंकडे। मागेंपुढें वळवळती॥
ते वाचा होय ज्या समोर। देखे तो पाठिमोरा ठाके नर।
नाक झांकूनि म्हणे हरहर। लहानथोर थुंकती॥

तुलसीदासजी कहते है कि 'जो मनुष्य रामनाम नही जपता उसकी जिह्वा सर्पकी जिह्वाके समान है और मुँह बिलके समान है। जो रामसे प्रेम नहीं करता, विधाता उसपर प्रतिकूल है।'

रसना साँपिनि, बदन बिल, जो न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न रामसों, ताहि बिधाता बाम

गुरु-महिमा

एकनाथके चरित्र और साहित्यमें उनकी निःसीम गुरुभक्ति बड़े महत्त्वकी बात है। उन्होने मनसा वाचा कर्मणा अपूर्व गुरुसेवा की और सेवाका फल भी उन्हें अपूर्वही मिला। नाथको बारहवे वर्षमें जनार्दनस्वामीका संग-लाभ प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् ३०–४० वर्षपर्यत उनके गुरु जीवित रहे। उन्हे गुरु-सेवाका पूर्ण आनन्द भोगनेको मिला। नाथकी यह धारणा थी कि गुरुद्वारा न केवल ईश्वर प्राप्त होता है अपितु गुरुही साक्षात् परब्रह्म है। उनके निकट वेद जनार्दन, शास्त्र जनार्दन, पुराण जनार्दन, योग जनार्दन, तप जनार्दन, कर्म-धर्म सब कुछ जनार्दनही है। गुरुका नाममात्रही हमारा वेदशास्त्र है— "**गुरुचें नाममात्र तेंचि आमुचें वेदशास्त्र।**" तथा जनार्दनस्वामीकी भेंटसे वेदान्त-सिद्धान्त अनुशीलनके कष्टकी आवश्यकता भी शेष नही रही। "**वेदान्त-सिद्धान्त पाहणें ते आटी। जनार्दन-भेटी निरसली।**" गुरुसेवा, गुरुकृपा व गुरुभक्तिपर नाथने सैकडो अभंग व पद रचे है। इसके अतिरिक्त सब ग्रन्थोमें उन्होंने गुरु-गौरवका अत्यन्त प्रेमपूर्वक वर्णन किया है। वे कहते है कि 'परब्रह्मने मेरे कल्याणके लिए जनार्दनरूप धारण किया और ब्रह्मके दर्शन कराए है।'

"**मनोभाव जाणुनि माझा। सगुण रूप धरिलें वोजा,**" **दाखविलें ब्रह्म भुवन।**

तुलसीदासने भी गुरुकी महिमा गाई है। वे ग्रन्थके आदिमें कहते है कि मै गुरुके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ जो मनुष्यरूपमें साक्षात् विष्णु है। वे कृपाके समुद्र है। महामोहरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए उनके बचन सूर्यकी किरणोंके समान है। जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे अन्धेरा मिट जाता है उसी प्रकार गुरुके उपदेशसे हृदयका अज्ञान मिट जाता है।

बंदौं गुरु पद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर-निकर॥

सद्‌गुरु बिना ब्रह्मज्ञान प्राप्त नही हो सकता। आँखोंसे देखनेका कार्य अवश्य सम्पादन होता है; परन्तु सूर्यके योगके बिना कोई वस्तु दिखाई नही देती। नावद्वारा नदीपार की जाती है; परन्तु कर्णधार अवश्य चाहिए। पर्याप्त पानी बरसनेसे पृथ्वी नरम हो जाती है और बीजमें अंकुर फूट जाते है; परन्तु जबतक बीज न बोया जाय तबतक फसल तैयार नही हो सकती। यदि रत्न कही अकस्मात् पड़ा हुआ मिल जाय तब भी रत्न खरा है या खोटा है देखनेके लिए पारखीकी आवश्यकता होती है। उपरोक्त चार दृष्टान्त देते हुए नाथमहाराज कहते है कि 'श्रद्धापूर्वक श्रीगुरुकी शरणमें जानेसेही निज सुखानुभव मिल सकता है। जो शब्दशास्त्रमें निपुण है, अनुभवी है और जिसमें शिष्यको समझानेकी शक्ति अच्छी है ऐसाही गुरु शिष्यको कृतार्थ करनेमें समर्थ होता है।'

'जो शब्द सानें पारंगतु। ब्रह्मानंदें सदा डुल्लतु।
शिष्य-प्रबोधनीं समर्थ। यथोचित निज भावें।'

एकनाथने लिखा है कि 'गुरु ऐसा होना चाहिए जो शरीर रखते हुए भी अहंकाररहित हो, घर रखते हुए भी घरसे आसक्ति न हो। संसारमें लौकिक स्थितिमे रहकर सामान्य मनुष्योंकी तरह भलेही रहे। फिर भी अनन्य भक्तिका आचरण करके शिष्योको यह उपदेश दे कि वे सब प्राणियोंमें हरिका स्मरण करे।'

देहीं असोनि नाहीं अहंकृती। गेहीं असोनि नाहीं गृहासक्ति।
शोखीं लोकामाजी लौकिक स्थिति। सुखें वर्तती लोकांसारिखें॥
ऐसिया पूर्ण प्रतीती। आचरोनि दावी हरिभक्ती।
हरि भजावा सर्वांभूतीं। हेच शिष्यांप्रती उपदेशी।

एकनाथने स्वात्मसुख ग्रन्थमें गुरुसम्बन्धमें १०० ओवियाँ लिखी हैं। भागवतमें भी मंगलाचरण गुरुभक्तिसे ओतप्रोत हैं। इसी प्रकार भावार्थ-रामायणमें यत्रतत्र गुरुमहिमा गाई गई है।

एकनाथने गुरु करनेकी आवश्यकतापर भी ज़ोर दिया है। वे लिखते है कि 'जिस ब्रह्मको बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ पहचान नहीं सकती, जो विवेकद्वारा

बोधगम्य नहीं है, जहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँच सकता है, जिसका निरूपण वेद नहीं कर सकते उस ब्रह्मका बोध गुरुकी दयासे संभव है।'

जें काळासी न कळे। जें देखो न सकती बुद्धचादि सकळें।
जेथें विवेकाचे मंद डोळे। गुरु-आज्ञेवीण॥
जें न प्रकाशे तरणी। जें न बोलवे वेदवचनीं।
येवढीये वस्तुचा गुरु दानी। दयाळत्वें॥

तुलसीदासने भी इसी आशयको यो व्यक्त किया ह :—

वे कहते है कि 'बिना गुरुके ज्ञान नही हो सकता, और बिना वैराग्यके भी ज्ञान नही होता, वेद और पुराणोका कहना है कि बिना हरिभक्तिके सुख प्राप्त नही हो सकता।'

बिनु गुरु होय कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विरागु बिनु।
गावहिं वेद पुराण। सुख कि लहहि हरि भक्ति बिनु।

ज्ञानेश्वरने भी इसी प्रकारके भाव व्यक्त किये हैं। वे कहते हैं :— इसमें सन्देह नहीं कि ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होती है; परन्तु ज्ञान स्थिर रहनेके लिये अन्तःकरण शुद्ध होना चाहिये। भगवानने निश्चित बताया है कि वैराग्यके बिना ज्ञान स्थिर नही हो सकता।

तैसें मोक्ष देईल ज्ञान। येथें कीर नाहीं आन।
परी तेंचि थारे अैसें मन। शुद्ध होआवें॥ ३५ अ० १५
तरी विरक्तीवांचूनि कहीं। ज्ञानासि तगणेंचि नाहीं।
हें विचारूनि ठाईं। ठेविलें देवें॥ ३६ अ० १५ (ज्ञानेश्वरी)

जिसको जाननेके प्रयत्नमें वेद मौन हो जाते हैं वह परमात्मा मनुष्यको कैसे प्राप्त हो सकता है? इसका उत्तर देते हुए नाथ कहते हैं कि पूर्वजन्मके पुण्य और पूर्ण अभ्यास करनेवाले दासकोही सद्गुरुकी कृपासे ईश्वरका ज्ञान हो सकता है। जानना व न जानना हरिकृपापरही अवलम्बित है। इसलिए भगवद्भजन करो।

वेद जाणूं गेला पुढें मौनावला। तें गुह्य तुजला प्राप्त कैंचें॥ १॥
पूर्व-सुकृताचा पूर्ण अभ्यासाचा। दास सद्गुरूचा तोची जाणे॥ २॥
जाणणें-नेणणें हरीचे ठिकाणीं। एका जनार्दनीं हरी बोला॥ ३॥

तुलसीदासने इस भावको यों प्रकट किया है। वे कहते हैं कि 'ईश्वरको वही पहचान सकता है जिसपर स्वयं भगवान कृपा करते हैं। ईश्वरके जाननेपर जीव ईश्वर हो जाता है।'

सो जाने जाहि देहु दिखाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि हुइ जाई॥

श्रीरामने विश्वामित्रसे ज्ञान उपदेश करनेके लिए बिनति की तो विश्वामित्रन उत्तर दिया कि "यदि गुरु शिष्यसे स्वयं कहे कि 'तू मेरा उपदेश ग्रहण कर तो लालच बढ़ जानेके कारण गुरुत्व नष्ट हो जाता है। इसलिए शिष्यके बिना पूछे ब्रह्मज्ञान नही कहना चाहिए। हे राम! यदि कोई अधिकारी भी हो तब भी उससे बिना प्रश्न किए जानेपर ज्ञान न कहना चाहिए।"

गुरु स्वयें म्हणे शिष्यास। तूं घे माझा उपदेश।
तेव्हांचि गुरुत्व पडलें वोस। वाढला असोस गुरुत्वलोभें॥ ४१॥
या लागीं शिष्यें न पुसतां जाण। आपण सांगूं नये ब्रह्मज्ञान।
जरी राम अधिकारी रत्न। तरी अप्रश्नीं ज्ञान सांगों नये॥ ४२॥
(बालकाण्ड अ० ११)

तुलसीदासने भी इसी आशयको यो स्पष्ट किया है:—

"जिनके हृदयमें रामभक्ति नही है उनसे हरिकथा न कहनी चाहिए।"

रामभक्ति जिनके उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिय तिन पाही॥

गीतामें बताया गया है कि 'शिष्यको गुरुसे ब्रह्मज्ञानके लिए बड़ी नम्रतासे प्रश्न करना चाहिए।'

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेश्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।

श्रीरामचन्द्रने वसिष्ठसे ज्ञानकी बात करते हुए कहा है कि 'गुरु-अवज्ञासे धर्म और कर्मका नाश हो जाता है। अपनी गाँठमें केवल अनर्थही रह जाता है। ऐसा प्राणी नरकको प्राप्त होता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनोंही गुरुके किंकर हैं। सद्गुरुसे बढ़कर तीनों लोकोंमें कोई दूसरा नहीं है।'

गुरु अवज्ञेची मात । स्वधर्म-कर्मा करी घात ।।
अंगीं रोकडा वाजे अनर्थ । नरकपात अनिवार ।। ८१ ।।
ब्रह्मा आणि हरिहर । तेही सद्‌गुरूचे किंकर ।
सद्‌गुरूहूनि थोर । नाहीं सत्पात्र तिहीं लोकीं ।। ८६ ।।

(बालकाण्ड अ० ११)

तुलसीदासने गुरु-अवज्ञाके लिए शिवजीद्वारा ब्राह्मणको शाप दिलाया है ।

गुरुका अपमान बड़ा भारी पाप है । श्रीशिवजी गुरुके अपमानको सह न सके । वे कहने लगे—"यदि ऐसे दुष्टको मैं दण्ड न दूँ तो श्रुतिमार्ग भ्रष्ट हो जायगा ।"

अति अघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सकेउ महेस ।।
जो नहिं करौं दंड खल तोरा, भ्रष्ट होइ स्रुति-मारग मोरा ।।

जब वसिष्ठजी रामचन्द्रजीसे कहते है कि दशरथ शस्त्रास्त्रविद्या देखना चाहते है तो रामचन्द्रजी उत्तर देते है कि गुरु, पिता और साधु-सज्जनोंकी आज्ञाका जो उल्लंघन करता है वह अभागी है । वह मनुष्य देह रखते हुए भी पाषाणतुल्य है । गुरु-आज्ञाको सुनतेही शीघ्रही तेजीसे दौड़कर गुरुके निकट पहुँच जाना चाहिए । गुरुकी आज्ञा पालन करनेमें जो समयकी प्रतीक्षा करता है वह बड़ा नीच है । जिसे गुरुवाक्य सुनकर आनन्द नहीं होता वह केवल पशु है । जो गुरुवाक्य सपादन करनेमे आलस्यसे काम लेता है उसे शिष्योंमें गधा समझना चाहिए ।

गुरुवचन-पितृवचन । साधु-सज्जन-आज्ञापन ।
उल्लंघी तो अभागी पूर्ण । तो पाषाण नर-देहीं ।। ५४ ।।
गुरु-आज्ञेचें उत्तर । ऐकतां धांवे अतिसत्वर ।
मुहूर्त पाहे तो पामर । झाला सुमित्र सन्निध ।। ५५ ।।
गुरुवाक्याचा उल्हासु । ज्या नाहीं तो केवळ पशु ।
शिष्यामाजी तो रासभवेषु । ज्यासी आळसू गुरुवाक्यीं ।। ५१ ।।

(अयोध्याकाण्ड, अ. १)

तुलसीदासने इस भावको यो व्यक्त किया है :—

वे कहते है कि 'जो दुष्ट गुरुसे ईर्ष्या करते है वे सौ कल्पतक रौरव नरकमें वास करते है और फिर त्रिजगयोनिमें प्रवेश करते है और हज़ारों वर्षोतक दुःख पाते रहते है।'

जे सठ गुरुसन ईर्षा करहीं रौरव नरक कल्प शत परहीं ॥
त्रिजगयोनि पुनि धरहिं सरीरा, अयुतजन्म भरि पावहिं पीरा।

फिर तुलसीदासजी कहते है कि 'माता, पिता, गुरु और स्वामीकी बातको बिना ही विचारे शुभ समझकर करना चाहिये। जिसको गुरुके वचनोंमे विश्वास नही है उसको सुख और सिद्धि स्वप्नमें भी सुगम नही है।'

मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं विचार करिअ सुभजानी ॥
गुरुके वचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख-सिधि तेही ॥

त्रिजटा श्रीरामसे कहती है कि 'ससार-सागर पार करने लिए गुरुकी सेवाके सिवाय दूसरा साधन नही है। तीर्थोतीर्थ भ्रमण करनेसे, ज्ञान, ध्यान व क्षमासे जो लाभ प्राप्त नही होता वह आत्मदर्शन-लाभ गुरु-दर्शनसे प्राप्त होता है। ब्रह्मप्राप्तिका मुख्य व सरल उपाय यह है कि सद्-गुरुका नामस्मरण व मनमे गुरुमूर्तिका ध्यान करे। कानसे गुरुचरित्र सुने और गुरुके चरणोंकी सेवा करे।'

तीर्था-तीर्थाचिया भ्रमणे। क्षमा नुपजे ज्ञान ध्यानें।
तो गुरु-भजनासाठीं जाण। आत्मदर्शन लाहिजे ॥ ११॥
मुख्य सद्गुरु-नामस्मरण। मनीं गुरुमूर्तीचें ध्यान।
श्रवणीं गुरुचरित्र-श्रवण। करी पूजन-पादसेवा।

तुलसीदासने गुरुचरण-नखोंको एक दिव्य ज्योति समझा है जो सूर्यके प्रकाशकी तरह हृदयके अज्ञानाध-कारको दूर करती है।

श्री-गुरु-पद-नख-मणि-गण-ज्योति। सुमिरत द्रव्य-दृष्टि हिय होती ॥
दलन मोह-तम हंस-प्रकासू। बड़े भाग्य उर आवहिं जासू ॥

एकनाथने गुरुकी महिमाका यों वर्णन किया है कि 'यदि गुरुको चितामणि कहा जाय तो चिन्तामणि चिन्तित मनुष्योको इच्छित वस्तु देती

है; परन्तु गुरु चिन्ता-निवारण करनेके बाद चिन्ता करनेवाले चित्तको ही चैतन्यस्वरूप कर देते हैं। यदि कल्पवृक्ष कहा जाय तो कल्पवृक्ष उसे ही दान देता है जो इच्छा करता है; परन्तु गुरु निरीहको भी ज्ञान देता है और वह भी बिना किसी प्रयोजनके। कामधेनु भी बिना कामना किए हुए दूध नहीं देती; परन्तु सद्गुरु बिना अभिलाषा किए हुएको भी देते हैं; इसलिए गुरुसे कोई मनुष्य उऋण नही हो सकता। यदि सद्गुरुके लिए अपना शरीर भी अर्पण कर दिया जाय तो भी उऋण नही हो सकता।'

चिंतामणि दे चिंतितार्थी। कल्पतरु कल्पिलें देता।
सद्गुरु दे निर्विकल्पता। त्यासी आतां काय द्यावें ॥ ८४ ॥
कामधेनूची दुभणी। कामनारूप त्यांची देणी।
अचिंत्य देणें सद्गुरु-वचनीं। उत्तीर्णता त्या लागोनि केविं होय ॥ ८५ ॥
देह उतराई होऊं सद्गुरूसी। तरी नैश्वर्यता देहासी।
नैश्वर्यासी पै अनैश्वर्यासी। उत्तीर्ण त्यासी घडेना ॥ ८७ ॥

भक्त-महिमा

एकनाथने भक्तका भी बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। भावार्थ रामायणमें भक्तकी महिमाका वर्णन हनुमानजी, प्रभा और सीताजीने किया है।

श्रीरामकी आज्ञासे भरतको आनन्द-समाचार ले जाते हुए हनुमानजीने रामध्वनि सुनकर भक्तका महात्म्य वर्णन किया है। वे कहते हैं कि 'भक्तके हृदयमें निरन्तर भगवानकी मूर्ति मौजूद होती है। भक्तका चित्त रात-दिन ईश्वरका चिंतन करता रहता है। वह ससारसे प्रेम करके रघुनाथजीसे प्रेम करता है। ऐसे भक्तको—जो अपने सिरपर देवतापर चढ़े हुए फूलोंको धारण करता है और उनके चरणोका तीर्थ हृदयमें धारण करता है और हरिका प्रसाद पाता है—श्रीरामकी मूर्ति ही समझना चाहिए।'

मनीं सतत भरली मूर्ति। चित्तें चिंतन अहोरात्रीं।
बुद्धीचा निश्चय रघुपती। संसार स्फूर्ति सांडोनियां ॥ १०७ ॥
नित्य निर्माल्य मिरवे शिरीं। चरणतीर्थ अभ्यंतरीं।
हरिप्रसाद ज्याच्या उदरीं। तो मूर्तिधारी श्रीराम ॥ ११० ॥

रावणवधके पश्चात् सुग्रीवके साथ सीता श्रीरामके निकट आई। सीताको अब पश्चात्ताप था कि उसने लक्ष्मणका कहना न मानकर लक्ष्मणजीको रामचन्द्रजीकी सहायताके लिए वनमें भेज दिया। सीताने रामचन्द्रजीसे आज्ञा लेकर लक्ष्मणसे क्षमायाचना की। वे कहने लगी कि 'श्रीरामचन्द्रजी भक्तिके वशमे हैं। वे भक्तोके हृदयमे निवास करते हैं। इसलिए जिसने रामभक्तकी पूजा की उसने षोडसोपचारसे रघुनाथजीकी पूजा की ऐसा समझना चाहिए। जिसने घीमिश्रित ग्राससे भक्तको भोजन कराकर संतुष्ट किया उसने मानो छ. रसोयुक्त पदार्थोका नैवेद्य भगवानको अर्पण किया। जिसने श्रीराम-भक्तका विरोध किया उसने मानो श्रीरामसे द्वेष किया और भगवान अमूर्त होकर भी फौरन ही उसका नाश कर देते हैं। प्रह्लादसे विरोध करनेके कारण हिरण्यकश्यपको मौतके घाट उतरने पड़ा। भगवद्भक्तसे द्वेष करनेवाला अवश्य ही नाशको प्राप्त होता है। दूसरोंकी बात-क्या है? लक्ष्मणको सतानेके कारण श्रीरामचन्द्रजी मेरे पीछे पड़ गए और उस समयसे मुझे तरह-तरहके सकट भोगने पडे।'

श्रीराम भक्ताचा अंकित। श्रीराम भक्ताचा विक्रित।
भक्तां सबाह्य श्रीरघुनाथ। नित्य नांदत सर्वदा ॥ १३३॥
म्हणोनियां यथार्थ। जेणें पूजिले रामभक्त।
तेणें पूजिला रघुनाथ। उपचारांयुक्त षोडश ॥ १३४॥
घृतप्लुत अवदानीं। भक्त सुखविले भोजनीं।
तेणें षड्रसें करोनी। केला रघुनन्दनीं नैवेद्य ॥ १३५॥
जेणें विरोधिले रामभक्त। तेणें विरोधिला रघुनाथ।
अमूर्त होवोनियां मूर्त। क्षणे घात करी त्याचा ॥ १३६॥
प्रल्हादासी विरोधितां। मरण पावला त्याचा पिता।
भगवद्भक्ताचा द्वेष करितां। विघ्नघातांवर पडा होय ॥ १३९॥
इतरांच्या कायशा गोष्टी। सौमित्र छळिलियासाठीं।
राम लागोनि माझे पाठीं। क्षणें दिग्पटीं लाविलें ॥ १४०॥

यद्धकाण्ड अ० ७१

तुलसीदासने भी लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर श्रीरामद्वारा भक्तका महात्म्य वर्णन किया है। वे कहते हैं कि 'मुझे आज न अपने माता-पिताके छोड़नेका दुःख है, न अयोध्या छोड़नेका, न वनवास होनेका और न सीताके हरे जानेका है। मुझे लक्ष्मणके मूर्च्छित होनेका भी कोई सोच नही है। लंकाके जलनेका दुःख नही है। यदि मेरे हृदयमे कोई सोच है तो विभीषणको अभयदान देनेका।'

तातको सोच न मातको सोचरु सोच नहीं मोहिं औध तजेको।
सोच नहीं वनवास भयो, किन सोच नहीं मोहिं सीय हरेको॥
लछिमन भूमि पर्‍यो नहिं सोच, न सोच कछू मोहिं लंक जरेको।
सोच भयो तुलसी इक मोकहूँ भक्त विभीषन-बाँह-गहेको॥

एकनाथके रामने भक्तकी महिमाके सामने अपनी प्रियतमाको भी कुछ नहीं समझा; तो तुलसीदासके रामने माता-पिता-स्त्रीको गिनाते हुए अपने भाई लक्ष्मणको भी भक्तके पदसे नीचा समझा है, जिसे रामचन्द्रजी सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। क्योकि वे कहते है कि :—

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलहि न जगत सहोदर भ्राता॥

एकनाथमहाराज कहते है कि 'भगवद्-भजनसे प्रेम करनेवाला चाडाल उत्तम वर्णके उस मनुष्यसे श्रेष्ठ है जो प्रभुके चरणोसे विमुख है।'

हो कां वर्णामाजी अग्रणी। जो विमुख हरिचरणीं॥
त्याहूनि श्वपच श्रेष्ठ मानी। जो भगवद्-भजनीं प्रेमळ।

जो जातिका नीच है पर भक्तिभावमें परिपूर्ण है उसने मेरे स्वरूपको प्राप्त कर लिया है और तीनों लोकोंमें पूज्य है। विदुर दासीपुत्र थे; परन्तु भक्तिके कारण वे भगवानके अतिप्रिय थे। परमार्थके लिए भक्तिही प्रधान है। जाति-अभिमानसे ईश्वर प्राप्त नही होता। चाहे किसी नीचसे नीच जातिका कोई मनुष्य क्यों न हो जिसकी भक्ति मुझमें है उसीको पवित्र समझना चाहिए। भजन द्वारा ही मनुष्य मुझे प्राप्त होते हैं।

जो जातीनें नीचत्वा गेला । परी भक्तिभावें उंचावला ।
तो मद्रूपता पावला । पूज्य झाला तिहीं लोकीं ॥ २९१ ॥
विदुर दासीपुत्र तत्त्वता । भावें पढिया भगवंता ॥
भावो प्रमाण परमार्था । जात्यभिमानता सरेना ! ॥ २९५ ॥
भलता हो भलते जातीं । ज्यासी माझी भावार्थें भक्ती ॥
तोचि जाण पां पवित्र मूर्ती । माझी प्राप्ती मद्भजनें ॥ २९७ ॥

फिर भगवान कहते हैं कि यद्यपि गधा चंदनके बोझको ढोता है तो भी चंदनकी सुगंधको नही पहचान सकता; उसी प्रकार मेरी भक्ति बिना विद्या व शास्त्रका ज्ञान केवल भारही है ।

चन्दन-भार वाहे खर । परी तो नेणें सुवासाचें सार ॥
माझेनि भक्तीवीण विद्याशास्त्र । केवळ भारवाहक ॥ ३०३ ॥

तुलसीदासने भी भक्तिका वर्णन इसी प्रकार किया है :—

" श्रीरघुनाथजी काकभुशुण्डिसे कहते है 'कि भक्तिसे रहित ब्रह्मा भी क्यों न हो; वह मुझे सब जीवोंके समान साधारण प्यारा है । भक्तियुक्त चाहे जैसा नीच प्राणी हो; वह भी मुझे प्राणोंके समान प्यारा है ।"

भक्तिहीन विरंच किन होई । सब जीवन समप्रिय मोहिं सोई ।
भक्तिवंत अति नीचौ प्रानी । मोहिं प्रान प्रिय सुन मम बानी ॥

एकनाथमहाराज कहते हैं कि 'भगवानकी भक्तिका सुख जो मनुष्य नही जानते उनसे भगवान किस तरह मिल सकता है ! ईश्वरप्राप्तिका एक ही अप्रतिम साधन है और वह है भक्ति। भगवान श्रद्धासे किए हुए भजन-पर सतुष्ट होते हैं ।

हरिभक्ति-सुख जे नर नेणती । त्यांसी भक्तपती केवीं भेटे ।
भक्तिच कारण भक्तिच कारण । यापरतें साधन नाहीं नाहीं ।
एका जनार्दन कीर्तन-गजर । भावें हरीहर सन्तोषती ॥

तुलसीदासने भी इस भावको प्रकट करते हुए कहा है कि 'प्रेम भक्तिरूपी जलके बिना हृदयके अन्दरके कलुषित विचार धोए नहीं जा सकते । वही मनुष्य सब जाननेवाला चतुर व पंडित है और वही कुशल व

सब शुभ लक्षणोंसे युक्त और सच्चा ज्ञानी व गुणी है जिसको श्रीरामके चरण-कमलोंमें प्रेम हो।'

प्रेम भगतिजल बिनु रघुराई। अभि-अन्तर-मल कबहुँ न जाई॥
सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पण्डित। सोइ गुन गृह विग्यान अखण्डित॥
दच्छ सकल लच्छन-जुत सोई। जाके पद-सरोज-रति होई॥

मनुष्य-देहकी महिमा

नाथमहाराज कहते है कि 'मनुष्यदेह बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इस लिए जो मनुष्य इस शरीरको पाकर भगवानकी भक्ति नही करता वह अपना जन्म व्यर्थ गँवाता है। अनेक जन्मोंके पुण्योके फलसे ही भगवद् उच्चार मुखसे होता है। चाहे कोई राजा हो या फकीर, ऊँच हो या नीच; भक्तिके बिना उसके मुंहमें मिट्टी ही पड़ती है। हरिहर अथवा रामनाम कहनेसे मनुष्यके पीछे सायुज्य-मुक्ति दौडती आती है।'

बहुतां सुकृतें नर-देह लाधला। भक्तिवीण गेला अधोगती।
बाप भाग्य कैसें न सरेचि कर्म। न कळेचो वर्म अरे मूढा।
अनेकां जन्मांचें सुकृत पदरीं। त्याचे मुखीं हरी बैठा होय।
राव रक हो का, उंचनीच यातो। भक्तिवीण माती मुखीं त्याच्या।
एका जनार्दनीं हरी हरी म्हणतां। मुक्ति सायुज्यता पाठीं लागे।

तुलसीदासने भी मनुष्य-देहको मोक्षका साधन एवं ज्ञान, वैराग्य व भक्तिको देनेवाला बताया है। इस शरीर द्वारा मनुष्य बुरे कर्म करनेसे नरकमें जाता है और अच्छे कर्म करनेसे स्वर्गमें जाता है अथवा मोक्ष पाता है। इसलिए इसे नरक स्वर्ग, और अपवर्गकी नसेनी कहा गया है। जो इस मनुष्य-शरीरका सदुपयोग नहीं करता वह सदा पछताएगा।

बड़े भाग मानुष-तन पावा। सुर-दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।
साधन धाम मोच्छकर द्वारा। पाइ न जेंहि परलोक संवारा।
सो परत्र दुःख पावइ सिर धुनि धनि पछिताइ।

नर-तन-सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ।
नरक-स्वर्ग-अपवर्ग-निसेनी । ज्ञान-विराग-भगति सुभ देनी ।
सो तनु धरि हरि-भजहिं न जे नर । होहिं विषयरत मन्द मन्दतर ।
कॉच किरिच बदलें ते लेहीं । करते डारि परस मनि देहीं ।

एकनाथने 'बहुता सुकृतें नरदेह लाधला ।' जहाँ उपयोग किया है वहाँ तुलसीदासने 'बड़े भाग मानुष-तन पावा ।' लिखा है । इन दोनोंमें कितना साम्य है !

भक्ति और मुक्ति

भक्ति और मुक्तिके निकट सम्बन्धको नाथमहाराजने अपने अभंगोंमें वर्णन किया है। वे कहते हैं कि 'भक्तिसे मुक्ति सहजही प्राप्त होती है, अतएव भक्ति मुक्तिसे अधिक महत्त्व रखती है। यदि भक्ति माता है तो मुक्ति पुत्री है। ये समझकर हे प्राणियों ! भगवानका भजन करो । भक्ति छोड़कर जो लोग मुक्ति चाहते है वे पागल है । कही मिठास गुडसे अलग रह सकता है ? जो मुक्ति, भक्तिसे प्राप्त होती है उसके प्राप्त करनेके लिए इधर-उधर क्यों भटकता है ? श्रद्धासे भक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त है । भावसेही परमात्मा प्राप्त होता है । इसमें सन्देह करनेकी जरूरत नही है । श्रद्धासे भक्ति मिलती है । श्रद्धाहीसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और इसीसे आत्मसुख प्राप्त होता है । ब्रह्मप्राप्तिका भक्तिही एक अद्वितीय साधन है जो सच्चिदानन्दको पहचाननेका राजमार्ग है ।

भक्तीच्या पोटा मुक्ति पैं आली । भक्तीनें मुक्तीतें वाढविलें ॥ १ ॥
भक्ति ते माता, मुक्ति ते दुहिता । जाणोनि तत्त्वतां भजन करी ॥ २ ॥
भक्ति सोडोनी मुक्ति वांच्छिती वेडी । गूळ सोडोनी कैसी जे गोडी ॥ ३ ॥
संतोशेषी भक्ति ज्यासी दे मुक्ति । तोचि लाभे, येर व्यर्थ कां शिणती ॥ ४ ॥
एका जनार्दनीं एक भाव खरा । भक्ति-मुक्ति दाटूनी आलिया घरा ॥ ५ ॥
भाव तोचि देव, भाव तोचि देव । ये अर्थी संदेह धरूं नका ॥ ६ ॥
भावें भक्ति फळे, भावें देव मिळे । निज भावें सोहळे स्वानंदाचे ॥ ७ ॥
एका जनार्दनीं भावाच्या आवडी । मनोरथ कोडीं पुरती तेणें ॥ ८ ॥
भावचो कारण, भावचो कारण । यापरतें साधन नाहीं नाहीं ॥ ९ ॥
एका जनार्दनीं भावची कारण । सच्चिदानंदावरील दावी खूण ॥१०॥

तुलसीदासने भी मोक्षसे भक्तिको अधिक बताया है । वे कहते है कि 'भगवानकी सगुण उपासना करनेवाले मोक्ष नही चाहते । वे स्वर्ग और अपवर्गको तृण समझते है।'

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन कहुँ राम-भगति निज देहीं॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा । दसरथ हरिष गए सुरधामा ॥
प्रीति सदा सज्जन-संसर्गा । तृनसम विषय स्वर्ग-अपवर्गा ॥
भगति पच्छ हठ नहीं सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥

अन्यत्र एकनाथ कहते है कि 'हे प्रभु! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट होकर माँगनेके लिए कहे तो मै यही माँगूँगा कि सिवाय आपके मुझे कुछ नहीं चाहिए । न मुझे वैकुण्ठ चाहिए, न मोक्ष; केवल इतनी कृपा कीजिए कि मैं आपका साक्षात्कार प्राप्त कर सकूँ । यदि मै आपसे कुछ और माँगू तो मुझे दण्ड दीजिए । यदि आप मुझे वैकुण्ठ देगे तो वह तुच्छ-सी वस्तु है । क्षीर-सागरमें शेषशय्यापर शयन करनेवाले प्रभु, इतनेसे होताही क्या है! मोक्ष देने और लेनेवाले दोनोही लज्जास्पद है। क्योकि जब भगवान प्रसन्नही हो गए तो भक्तके रोमरोममे भगवान निवास करने लगता है । आप तो सबके हृदयमें निवास करते है । यदि आप मुझे अपना साक्षात्कार नही कराते तो कम-से-कम यह वरदान दीजिए कि मै आपके अखंड कीर्तनमे प्रेम करूँ और मुझे सदा सत्संग प्राप्त हो, चाहे सबसे छोटाही बना दे । मुझे कोई आपत्ति न होगी।'

देव तुष्टला माग वेगें। तुजवांचूनी आन नेघें॥
देवा इतुकी कृपा करीं॥ जे मी तूझा घोट भरीं।
आणिक कांहीं मागें जरी। तरी मज दंडावें दातारी।
वैकुंठ देईन रे एका। तो तंव फोडीव कुटका।
क्षीरसागर शेषशयनी। काय चालवीशी इतुकेनी।
सोहं पद विसावनें। देतां-घेतां लाजिरवाणें॥
एकाजनार्दनीं तुष्टला। देव सर्वांगीं घोटला॥
सर्वांभूतीं तूझे रूप। हृदयीं सिद्धचि स्वरूप॥
इतकें देई अधोक्षजा। नाहींतरी घोट भरिन तुझा॥
अखंड कीर्तनीं अनुरागु। सदा द्यावा संत-संगु।
सकळांहूनी करीं सहान। सकळी माझें समाधान॥

अनन्य भक्ति

एकनाथ भगवानके अनन्य भक्त थे। एक स्थानपर उन्होंने कहा है कि संपूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामीको सबकी चिन्ता है। अतएव हे जीव! तू भक्तिसे ईश्वरका नामस्मरण कर। तू किसी बातकी चिन्ता मत कर। क्योंकि लक्ष्मीपति भगवान तुम्हारी प्रत्येक आवश्यकताको जानता है। वह सब प्राणियोंकी देखभाल करता है, फिर तुम्हें क्यों विमुख रखेगा? जिस हालतमें हो उसीमें भगवानपर भरोसा किए पड़ा रह। भगवानकी कृपासे प्रारब्धके भोगका नाश हो जायगा और तुझे आनन्द प्राप्त होगा।'

आवडीनें भावें हरीनाम घेसी। तुझी चिंता त्यासी सर्व आहे।
नको खेद धरू कोणत्या गोष्टीचा। पती लक्षुमीचा जाणतसे॥
सकळ जीवांचा करितो संभाळ। तुज मोकलील ऐसें नाहीं॥
जैशी स्थिति आहे तैशापरी राहें। कौतुक तूं पाहे संचीताचें॥
एकाजनार्दनीं भोग प्रारब्धाचा। हरीकृपें त्याचा नाश झाला॥

इस पदमें गीताके इस श्लोककी छाया पाई जाती है :—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

इसी भावको एक हिन्दी कविनें इस प्रकार प्रदर्शित किया है :—

जब दाँत नहीं तब दूध दियो, जब दाँत दिये तो का अन्न न दे हैं।
जो जलमें थलमें नभमें, सबकी सुधि लेत सो तेरी हू ले हैं।
काहे कों सोच करै मन मूरख सोच करें कछु हाथ न ऐ हैं।
जान कों देत अजान कों देत, जहान कों देत सो तोऊ कों दे हैं।

तुलसीदासने भी इसी आशयको यों स्पष्ट किया है वे कहते हैं कि जो मनुष्य सब भरोसा छोड़कर श्रीरामजीका भजन करता है और प्रेम-सहित श्रीरामके गुण गाता है वह निःसंदेह संसारसे तर जाता है। कलियुगमें श्रीरामनामका प्रताप प्रकट है।

सब भरोस तजि जो भजु रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥
सो भव-तरु कछु संशय नाहीं। नाम-प्रताप प्रकट कलिमाहीं॥